आदर्श जैन महात्मा

महात्मा सुकुमाल

(१)

विख्यात अवन्ति देशके प्रसिद्ध उज्जैनी नगरीकी सुन्दरता का वर्णन करना उसकी मनोहरता की महत्ता को नष्ट करना है,क्योंकि उस समय वह नगरी अपनी अपूर्व शोभा में कवि की लेखनी से कहीं अधिक बढ़ी चढ़ी थी। कविकी लेखनी जिस प्रकार महान पुरुषों के पुण्य जन्म दिवसों को उत्तम वर्णों द्वारा गुंफित कर यशराशि को प्राप्त करती है, उज्जैनी नगरी भी उसी प्रकार महान् पुरुषों के पुण्य जन्म दिवसों से यशराशि को वर्द्धित कर चुकी थी।

उस समय उस नगरी के श्रेष्ठ शासक महाराजा प्रद्योतन थे। उनके राज्य की प्रचुर लक्ष्मी का संरक्षण करने वाले असंख्य लक्ष्मी से विभूषित श्रेष्ठी सुरेन्द्रदत्त उस नगरी के प्रसिद्ध

धनिक श्रेष्ठी थे। प्राचीन भारतवर्ष की अटूट संपत्ति का परिचय देने वाले सुजन सुरेन्द्रदत्त असंख्य द्रव्य के स्वामी थे। पतिव्रता, पतिभक्ति और सुशीलता द्वारा अपनी यशराशि वर्द्धित करने वाली विदुषी, महिला श्रेष्ठा यशोभद्रा श्रेष्ठी सुरेन्द्रदत्त की प्रिय अर्द्धांगिनी थी। युगल दंपति पूर्व सत्कृत्यों के फल स्वरूप सांसारिक सुख रत्नाकर में निरंतर मग्न रहते थे। वास्तव में पूर्व जन्म में किए हुए सचित शुभ अशुभ कर्मों का फल प्रत्येक व्यक्ति के लिए भोगना अनिवार्य होता है।

इन्द्रदत्त श्रेष्ठी ने पूर्व जन्म में अनेक सत्कृत्य किए थे उसी के फल स्वरूप वह अनंत ऐश्वर्य के स्वामी बनकर अपने जीवन के बहुभाग को सुख रत्नाकर में मग्न रह कर व्यतीत करते थे।

किन्तु यह क्या ? युवावस्था की अनेक सुखमग्न घटिकाएं विनोद के साथ पूर्ण करते हुए कुछ समय से उनके सुख पूर्ण हृदयों में किंचित् विषाद की रेखा क्यों प्रतीत होने लगी इसका क्या कारण है ?

श्रेष्ठी इन्द्रदत्त के समस्त विषय विलास सामग्री उप-[illegible] पर भी उनकी अनन्त सुख संपत्ति का उत्तराधि-[illegible] नहीं था, वह निःसंतान थे, यही कारण था कि "मेरे [illegible] इस असंख्य साम्राज्य का स्वामी कौन होगा ? हमारे [illegible] की कीर्ति पताका कौन स्थिर रख सकेगा" यह

दुश्चिन्ता उसके हृदयस्थित संपूर्ण सुख संकल्पों को नष्ट भ्रष्ट करने लगी थी। वह अपने को पुत्र विहीन होने के कारण भावी सुख की कल्पना से सर्वथा वंचित समझ निराश रहने लगे थे।

(२)

शरद् काल के प्रातःकाल का समय था, प्रकृति शांति और स्थिर थी, समस्त दिशाएं निर्मल हो रही थीं, यशोभद्रा अपने महल की छत पर बैठी हुई प्रातःकालीन शोभा का निरीक्षण कर रही थी। इसी समय उसने देखा—उसने देखा एक सुकुमार धूल से धूषित हुए शिशु ने शीघ्रता से अपनी माता की गोद में अपना सुकुमार मस्तक झुका दिया। उसकी माता ने अत्यंत स्नेह पूर्वक उसके सरल मुँह को चूमकर उसे अपनी गोद में प्रेम पूर्वक बिठला लिया और अत्यंत स्नेह एवं विनोद सहित उसकी धूल झाड़ने लगी। यशोभद्राने जीभर कर अपनी आँखों के सम्मुख ही यह दृश्य अवलोकन किया, उसके हृदय में पुत्राभाव के कारण इस दृश्य अवलोकन ने बड़ा भीषण आघात पहुंचाया. वह व्याकुल चित्त होकर विचारने लगी "अहा! सरल हास्यपूर्ण-मधु मिश्रित तोतली बोली से बोलकर यह बालक अपनी माता के हृदयमें किस प्रकार अपूर्व अमृत-रस की वृष्टि करता है। दारिद्रय का भयंकर दुःख, हृदय की तीव्र दाहक वेदनाएं-उसके सरलता पूर्ण मुख का निरीक्षण कर ने पर क्षण भर में विलय हो जाती हैं और अनंत शोक के स्थान

में वह स्वर्गीय सुखकी सृष्टि उत्पन्न करने लगता है, जलते हुए हृदय मरुस्थल में नवीन सुखाशा के मेघों का आकर्षण करने लगता है। वह बालक, हां वही बालक ' ' अहा ! वह महिला कितनी सौभाग्य शालिनी है जिसकी गोद उस सुकुमार शिशु से सुशोभित है। मैं यह असंख्य वैभव और स्वर्गीय विलास पूर्ण होते हुए भी उस सुख से सर्वथा वंचित हूँ। मां, अहा ! मां शब्द कितना ललित है, कितना प्रमादोत्पादक है जिसको श्रवण कर हृदय तंत्री हर्षसे झंकरित होने लगती है। हा ! मैं उसी मां शब्द श्रवण से सर्वथा वंचित हूँ, मैं कितनी हतभागिनी हूँ। स्त्रीजीवन का सौभाग्य माता बनने में ही है; क्या कभी मुझे भी कोई इस मधुर मां शब्द से संबोधित करेगा ? क्या कभी पुत्र के सुकोमल शरीर से मेरी भी गोद पूर्ण होगी" यशोभद्रा इन्हीं विचार तरंगों में तन्मय होगई। कुछ समय पश्चात् उसका ध्यान भंग हुआ, सूर्य रश्मि से सारा संसार स्वर्णमय होगया था। वह उठी, नित्य नियमानुसार स्नानादि पूर्वक उसने देव वंदनार्थ चैत्यालय को प्रस्थान किया। देव पूजन, वंदन, स्तुति आदि के पश्चात् वह स्वगृह को आने के लिए तत्पर हो रही थी कि इसी समय उसने चैत्यालय स्थित महामुनीश्वर का अवलोकन किया। उसका हृदय गुरु भक्ति से परिपूर्ण होगया उसने उनको श्रद्धा, भक्ति एवं विनय पूर्वक स्तुति तथा वंदना की। मुनि महाराज उसे धर्म वृद्धि देते हुए धर्मोपदेश देने लगे।

उज्जैनी नगरी के उद्यान में आया हुआ था, उनका हृदय में वैराग्य उत्पन्न करने वाला बोधप्रद उपदेश होरहा था। श्रेष्ठी सुरेन्द्रदत्त भी महात्माओं का उपदेश श्रवणार्थ गए थे। एक बार के उपदेश ने ही श्रेष्ठी सुरेन्द्रदत्त के सरल हृदय पर अपना विलक्षण प्रभाव डाला। उनके हृदय में घोर वैराग्य उत्पन्न होगया और वह उसी समय दीक्षा लेने के लिए उत्सुक हो उठे। उन्होंने तत्काल ही मुनि महाराज के समीप ही दीक्षा धारण करली, पश्चात् उन्होंने पुत्र जन्मका शुभ संवाद श्रवण किया, किन्तु वह सांसारिक नश्वर सुख उपभोग से कहीं अधिक मूल्यवान आत्मसुख के पथ पर प्रवेश कर चुके थे, उन्हें इस संवाद से कोई हर्ष विषाद नहीं हुआ, वह स्थिर चित्त से महाव्रतों का पालन करने लगे। समय की विचित्रावस्था है, एक ओर विदुषी यशोभद्रा पुत्र जन्म के अविरल आनंद से हर्षमग्न होरही थी और दूसरी ओर उसके पति आत्मरस के अनंत आनंद सिंधु में तन्मय हो रहे थे।

सुन्दरी यशोभद्रा को पति के दीक्षा धारण करने का संवाद विदित हुआ, उसने हृदय को थामकर इस संवाद को श्रवण किया, किन्तु इस संवाद से उसके प्रसन्नता पूर्ण हृदय में विशेष खेद उत्पन्न नहीं हुआ "मेरे पति ने अनंत सुख स्थान मोक्ष प्राप्ति के लिये ही यह श्रेष्ठ प्रयत्न किया है, वह इस पवित्र दीक्षा कृत्य द्वारा आत्मोन्नति के उज्वल पथ पर पदार्पण कर

सम्बन्ध में प्रश्न उपस्थित किया। यशोभद्रा के हृदय में आशंका का बीज पूर्ण रूपेण स्थिर करता हुआ वह निमित्त ज्ञानी अपनी वचन चातुर्यता के साथ २ इस प्रकार निवेदन करने लगा-वह बोला "हे सुभगे ! यह सुकुमाल बड़ा महात्मा पुरुष है। अस्तु महात्माओं का समागम अथवा उपदेश प्राप्त होने से यह अपने हृदयस्थित दिव्य आत्मप्रभाव को अवश्य प्रकाशित करेगा, अर्थात् जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर अपना पूर्ण उत्थान करेगा" इतना कहकर निमित्त ज्ञानी मौन होगया। यशोभद्राने निमित्त ज्ञानी के शब्दों को बड़ी धैर्यता पूर्वक श्रवण किया, एवं उन्हें सम्मान पूर्वक विदा किया।

मनुष्योंके हृदयोंकी आशंकाएं निर्मूल नहीं होतीं अथवा यह कथन सर्वथा युक्ति संगत होगा कि किसी न किसी कार्य की योजनाओं को लेकर ही मानवों के हृदयों में आशंकाएं उदित होती हैं। यशोभद्रा अपने पुत्र के विषय में निमित्त ज्ञानी द्वारा वैराग्य संबन्धित वार्तालाप को श्रवण कर विचार ने लगी-- "*मेरी पूर्व आशंका निर्मूल नहीं थी,* अच्छा हुआ,जो मैंने समय रहते इस विषय का निर्णय कर लिया अन्यथा भविष्य में इस का कोई प्रतिकार अथवा प्रयत्न करना असंभव होता। तब क्या मेरा हृदय धन--नेत्रतारा--कुमार सुकुमाल मेरे अविरल स्नेह को त्याग कर--इस अटूट वैभव से मुंह मोड़ कर--तपस्वी बनेगा ? इतना सुकोमल शरीर, क्या कठिन तपश्चरण करने

पाए। इतना ही नहीं ये महात्मा इस गृह में कभी प्रवेश ही नहीं करने पाएँ। तब फिर इसके घोर विषयारण्य हृदय में वैराग्य की आवाज़ कैसे प्रवेश करने पाएगी, कदापि नहीं। तब मैं ऐसा ही प्रयत्न करूंगी" उपरोक्त विचारों के चिन्तन से उस का म्लान मुख हर्ष के वेगसे चमक उठा. विषाद की प्रचंड रेखा उसके हृदय से विलीन होगई।

(५)

कुमार सुकुमाल अपनी प्रेममयी माताकी अनुकम्पा से बाल्यपन से ही रत्नविचित्र सुन्दर प्रासादों में रक्षित रक्खा जाने लगा, वयानुसार समस्त विनोद सामग्रिएं उसके नेत्रों के समक्ष प्रत्येक समय पर उपस्थित रहने लगीं। वह विविध प्रकार के विनोदों द्वारा अपने बाल्यकाल की मोदमय घटिकाओं को व्यतीत करने लगा।

बाल्यावस्था के सरल विनोद का भग करने वाले नवीन यौवन विकाश ने क्रमशः उसके समस्त शरीर को आलंकृत करने का प्रयत्न किया। उसने अपने इस प्रयत्न में आशातीत सफलता प्राप्त की। क्रमशः बालपन के समस्त चिन्ह यौवन के प्रचंड प्रताप के सम्मुख विलीन होने लगे, उसका समस्त शरीर यौवन के पूर्ण साम्राज्य से विभूषित होगया। अब क्रमशः विनोद सामग्रियों की न्यूनता के साथ २ मनोरम विलास की सामग्रिएं उसके समक्ष उपस्थित होने लगीं, बुद्धिमती यशो-

पाए। इतना ही नहीं ये महात्मा इस गृह में कभी प्रवेश ही नहीं करने पाएँ। तब फिर इसके घोर विषयारण्य हृदय में वैराग्य की आवाज़ कैसे प्रवेश करने पाएगी, कदापि नहीं। तब मैं ऐसा ही प्रयत्न करूंगी" उपरोक्त विचारों के चिन्तन से उस का म्लान मुख हर्षके वेगसे चमक उठा, विषाद की प्रचंड रेखा उसके हृदय से विलीन होगई।

(५)

कुमार सुकुमाल अपनी प्रेममयी माताकी अनुकम्पा से बाल्यपन से ही रत्नचित्रित सुन्दर प्रासादों में रक्षित रक्खा जाने लगा, वयानुसार समस्त विनोद सामग्रिएं उसके नेत्रों के समक्ष प्रत्येक समय पर उपस्थित रहने लगीं। वह विविध प्रकार के विनोदों द्वारा अपने बाल्यकाल की मोदमय घटिकाओं को व्यतीत करने लगा।

बाल्यावस्था के सरल विनोद को भग करने वाले नवीन यौवन विकाश ने क्रमशः उसके समस्त शरीर को आलंकृत करने का प्रयत्न किया। उसने अपने इस प्रयत्न में आशातीत सफलता प्राप्त की। क्रमशः बालपन के समस्त चिन्ह यौवन के प्रचंड प्रताप के सम्मुख विलीन होने लगे, उसका समस्त शरीर यौवन के पूर्ण साम्राज्य में विभूषित होगया। अब क्रमशः विनोद सामग्रियों की न्यूनता के साथ २ मनोरम विलास की सामग्रिएं उसके समक्ष उपस्थित होने लगीं, बुद्धिमती यशो-

भद्रा ने सुकुमाल का हृदय विलास में आबद्ध करने के लिए उसकी वयानुकूल यौवन के प्रबल वेग से उन्मत्ता सुकुमारी नव यौवना कन्याओं के समूह से उसे वेष्ठित कर दिया, उसका अनेक सुन्दरी कन्याओं से विवाह कर दिया, उसके चारों ओर विलास की उद्दीप्त तरंगें उमड़ने लगीं, चपल और चंचला रमणियें अपने तीक्ष्ण किन्तु मधुर कटाक्षपात द्वारा उसका हृदय अवरुद्ध करने लगीं, उस अनंत विलास रत्नाकर में मग्न हुआ सुकुमाल अपने जीवन के अमूल्य समयों को समस्त संसार की विस्मृति संयुक्त व्यतीत करने लगा।

(६)

उज्जैनी नगरी में एक रत्न विक्रेता व्यापारी आया हुआ है। उसके समीप बड़े कीमती सुन्दर रत्न मणि आदि विक्रियार्थ उपस्थित थे। उनमें एक बहुमूल्य रत्न-कंवल भी था। व्यापारी ने महाराज प्रद्योतन की बड़ी प्रसिद्धता श्रवण कर रक्खी थी, अस्तु उसने महाराज के राज्य दरबार में उपस्थित होकर उक्त रत्न कंवल महाराज को दिखलाया, रत्न कंवल बड़ा सुन्दर एवं दीप्तवान था-किन्तु उसका मूल्य अधिक होने के कारण महाराज उसे न खरीद सके, तब वह निराश होकर श्रीमती यशोभद्रा के समीप उपस्थित हुआ, एवं उसने उससे उक्त रत्न कंवल लेलेने की प्रार्थना की। संपत्तिशाला यशोभद्रा अटूट संपत्ति की स्वामिनी थी—अस्तु उसने कुमार सुकमाल

के विनोदार्थ उक्त बहु मूल्य रत्न-कम्बल द्रव्य देकर खरीद लिया। उक्त रत्न कम्बल उसने कुमार सुकुमालके समीप भेज दिया किन्तु उस कठोर रत्न कम्बल को सुकुमार सुकुमाल ने पसंद नहीं किया, अस्तु विदुषी यशोभद्रा ने उस कम्बल के टुकड़ों द्वारा अपनी सुन्दरी वधुओं के लिए मनोहर पादत्राण बनवा दिए।

एक समय कुमार सुकुमाल की ज्येष्ठा पत्नी उक्त पादत्राणों को खोलकर पाद प्रक्षालन कर रही थी, इसी समय मांस पिंडक लाभ से एक भयंकर गिद्ध उक्त पादत्राण को चोंच में लेकर नभयान में जा उड़ा। वह कुछ दूर ही गया होगा, कि उसे यह ज्ञात हुआ कि यह मांस पिंड नहीं है, अस्तु उसने वहीं पर आकाश से उस पादत्राण को छोड़ दिया, सौभाग्य से उक्त बहुमूल्य पादत्राण नगर की प्रसिद्ध वेश्या के मकान पर गिर पड़ा। वह उस समय अपने महल पर खड़ी हुई थी। उक्त बहुमूल्य पादत्राण का अवलोकन कर वह बड़ी चकित हुई। उसने सोचा ऐसा रत्न तो महाराजा की पटरानी का होना—अतः उसने उसे महाराजा के समीप उपस्थित कर दिया। "इसकी बहुमूल्य जूतियां किस सौभाग्य शालिनी महिला की होंगी ? इस राज्यमें इतना धनिक धर्मी कौन है !" महाराज उक्त पादत्राण को देखकर आश्चर्य सागर में डूब गए, उन्होंने अपने सैनिकों द्वारा इस बात का पता लगवाया तो उन्हें

ज्ञात हुआ कि यह जूती अमित धन सम्पन्ना विदुषी यशोभद्रा के पुत्र सुकुमाल की पत्नी की है। वह कुमार सुकुमाल के दर्शन को लालायित हो उठे और स्वयं कुमार के दर्शनार्थ यशोभद्रा के यहां उपस्थित हुए। विवेक शीला यशोभद्रा ने उन का सादर अभिवादन किया एवं अत्यंत उच्च रत्न—सिंहासन पर बैठाया। महाराजा, कुमार सुकुमाल की सुन्दरता और मोहकता अवलोकन कर अत्यंत संतुष्ट हुए। इसी समय विदुषी यशोभद्रा ने तैल पूरित दीपक द्वारा उनकी आरती उतारी, किन्तु यह क्या? उक्त दीपक के निरीक्षण से सुकुमार सुकुमाल की बड़ी २ आंखों से गर्म गर्म अश्रु निकल कर उसके गालों पर बहने लगे, उक्त दीपक की बढ़ी हुई ज्योति के तेज को, रत्नदीपकों के साथ विनोद करने वाले उसके नेत्र सहन नहीं कर सके—उक्तदीपक के प्रकाश की गर्मी उसके नेत्रों द्वारा अश्रुओं के रूप मे बाहिर निकलने लगी। महाराजाने देखा, यह क्या! कुमार की आंखों से इस प्रकार अश्रुधार क्यों बह रही है, उन्होंने आश्चर्य संयुत यशोभद्रा से पूछा।

यशोभद्राने कहा—"महाराज! यह निरंतर रत्न दीपकों के प्रकाश में अपने दिन रात्रि के समय को विलीन करता है। इस की आँखों ने कभी सूर्य प्रकाश और दीपक की ज्योति के तेज का अवलोकन ही नहीं किया। आज आप की आरती उतारते समय अनायास दीपक की तीव्र ज्योति के सम्मुख

प्रशंसा करते हुए कहा " यह सुकुमार शरीर का धारक सुकुमाल मेरे राज्य में सुकुमारपने के लिए आदर्श है। मैं इसे सहर्ष अवंती-सुकुमार की पदवी प्रदान करता हूँ " भोजन समाप्त हुआ। भोजन के पश्चात् महाराजा प्रद्योतन सुकुमाल के मनोहर बाग में भ्रमण करने लगे। अनायास ही उन के हाथ की रत्न जड़ित अंगूठी समीप की बावड़ी में गिर पड़ी। उस को देखने के लिए उन्होंने बावड़ी में प्रवेश किया तो उन्हें ज्ञात हुआ कि उक्त बावड़ी में असंख्य मूल्यवान अनेक रत्नजड़ित आभूषण विद्यमान हैं। वे कुमार सुकुमाल के अनंत वैभव को अवलोकन कर अत्यन्त विस्मित हुए। कुछ समय पश्चात् उन्हों ने राज्यभवन को प्रस्थान करने की इच्छा प्रकट की। यशोभद्राने उन्हें बहुमूल्य रत्न का थाल समर्पण करते हुए सम्मान पूर्वक बिदा किया। महाराज ने सुकुमाल की सुकुमारता और अनंत वैभव संपन्नता पर विचार करते हुए राज्य भवन को प्रस्थान किया।

(७)

तपस्वी गणधराचार्य्य ने इस वर्ष अपना चातुर्मास यशोभद्रा के महल समीपस्थ उद्यान में करनेका विचार करते हुए वहाँ योग धारण किया। शीघ्र ही उनके योग धारणकरने का संवाद यशोभद्रा को विदित हुआ। वह सशीघ्र उन के समीप उपस्थित होकर वंदना एवं विनय पूर्वक प्रार्थना करने

ने में नहीं है, किन्तु वास्तविक महत्ता उस के त्याग में, निर्ममत्व होने में और उस के सर्वस्व दान में है। स्वामी तो प्रत्येक व्यक्ति सरल प्रयत्नों के द्वारा ही बन सकता है। ज्ञान शून्य, अविवेक पूर्ण हिंसक और व्यसन व्यस्त व्यक्ति भी वैभव के सर्वोच्च शिखर पर आसीन हो सकते हैं, किन्तु केवलमात्र यही मानव कर्तव्य नहीं है। मानव कर्तव्य है सर्वस्वपरित्याग,सर्वस्व दान। संपत्ति न होने पर भी-अनन्त वैभव न होने पर भी सर्वस्व त्यागी आत्मावलंबी व्यक्ति सर्वोपरि और सर्वश्रेष्ठ है।

सुकुमार सुकुमाल के कोमल हृदय पर महात्मा जी के उच्च उपदेश ने अपना पूर्ण प्रभाव डाला, उन का हृदय त्याग के महत्व से परिपूर्ण हो गया, उन्होंने उसी समय सर्वस्व त्याग मुनिराज के समक्ष दीक्षा धारण करली।

(८)

भीष्म युद्ध में प्रबल शत्रुओं के सम्मुख वीरता पूर्वक आक्रमण कर उन्हें विजित करना वास्तव में वीरता नहीं कहलाती, विकराल शब्द करने हुए भयानक वेग द्वारा मानवों का हृदय विकंपित करने वाले तीक्ष्ण पंजों से मानव शरीरों को विदीर्ण करने वाले श्वापद से युद्ध करने में भी वीरता की महत्ता प्रकट नहीं होती।

करण भेदी से मानवों के हृदय में भय उत्पन्न करने वाले आशीविष सर्प को वशीभूत करने में भी कोई वीरता नहीं है।

ज्ञानसे शून्य विषय वासना और सांसारिक प्रलोभनाओं में अनु-
रंजित कुछ व्यक्ति प्रत्यक्ष में तपस्वी और महात्माओं का वेष
धारण कर अपनी उदर पूर्ति एवं यश.सम्मान की तीव्र आकां-
क्षाओंकी पूर्णतामें मग्न हुए दिखलाई देते हैं। कुछ मनुष्य भोले
मानवों को ढोंग दिखाकर अपना मतलब सिद्ध करने के लिए
विविध वेषों में यत्र तत्र भ्रमण करते हैं, किन्तु वास्तव में देखा
जाय तो वह अप्रत्यक्ष रूपसे आत्मवंचक शुष्क सम्मान के भूखे
और मानवों को कुपथ में भटकाने वाले ही होते हैं। उनके हृदय
अध्यात्ममार्ग से, सत्य ज्ञान से सर्वथा शून्य होते हैं। वह
आत्म बोध के किनारे ही नहीं पहुँच पाते, किन्तु अपनी
विषय वासना पूर्ति के लिए मानवों में नवीन प्रकार की
व्यभिचार प्रणालिएँ अथवा बलात् व्यभिचार आदि की
कुत्सित कुरीतियों का प्रचार कर ब्रह्मचर्यके महत्त्व को संसार
से नष्ट कर उसका अस्तित्व मिटाने का घोर आन्दोलन करने
में ही व्यस्त रहते हैं। इनके सामहने आत्मशुद्धि, तात्विक विचार
बड़ी टेढ़ी खीर हैं। वास्तव में योगाराधन अथवा तपश्चरण
बड़ा कठिन कार्य है। वह सच्चे तपस्वी नहीं हैं; वास्तव में वह
बड़े धूर्त ठग और वंचक हैं, जो प्रत्यक्ष में अन्य भोले भाइयों के
धर्म को ठगते हैं और अप्रत्यक्ष रूप से, अपने आत्मज्ञान से
च्युत होकर घोर पतन के सम्मुख प्रस्तुत होते हैं। तपस्वी
वही हैं जिन्होंने अपनी इन्द्रियों और मनके ऊपर पूर्ण रूपसे

हिंसा जाग्रत हो उठी। वह ध्यानमग्न सुकुमाल के सुकोमल शरीर को बड़े चाव से भक्षण करने लगी। अरे यह क्या ! महात्मा सुकुमाल के कोमल शरीर से रुधिर की धारा बहने लगी। उस के छोटे २ बच्चे उसके रुधिर से अपने शरीर की ज्वाला को तृप्त करने लगे ! किन्तु महात्मा सुकुमाल अचल मेरु-स्थिर थे। वह आत्म ध्यान में मग्न थे, उन्होंने पार्थिव शरीर से घृणित हाड़ मांस चर्म से आच्छादित शरीर से सर्वथा ममत्व को त्याग कर उससे पृथक अविनश्वर, अमर आत्मध्यान में अपने मन को अपनी विचार शक्तियों को तन्मय कर दिया था।

शृगालिनी उन महात्मा सुकुमाल की सुकोमल जंघाओं का ही भक्षण कर तृप्त नहीं हुई। उसने क्रमशः उनके हाथ पैर, पेट आदि का भक्षण करना प्रारंभ किया। जिस निर्दयता से उसने उनके शरीर को नोच कर खाना प्रारंभ किया था, आह ! उस दृश्य, उस लोमहर्षक दृश्य के विचार से हृदय करुणा से आर्द्र होजाता है। किन्तु हाय ! निष्ठुर शृगालिनी के हृदय में किंचित् भी दया के लिए स्थान नहीं था। उन महात्मा का सुकोमल शरीर भक्षणकर उसके शरीर में अपूर्व शक्ति उत्पन्न हुई और वह लगातार तीन दिवस पर्यंत उनके शरीर का भक्षण करती रही। इतने समय में महात्मा के हृदय से किंचित् भी आह नहीं निकली। वह किंचित् भी विचलित नहीं हुए। धन्य है जैनियों के महात्माओ ! धन्य है आत्म उपासक

महर्षि ! आपकी अचल दृढ़ता को चिंतवन कर हृदय आपके अभूतपूर्व आत्म गौरव के सम्मुख अर्पित हो जाता है। महात्मन् आपको धन्य है।

तृतिय दिवस संपूर्ण शरीर के भक्षण से उनका ध्यानस्थ आत्मा ने इस नश्वर शरीर को परित्याग कर स्वर्ग के श्रेष्ठतम ऐश्वर्य भूषित इन्द्रासन को प्राप्त किया। वह दिव्य विभूति विभूषित सुंदरी देवांगनाओं से वेष्ठित इन्द्रपद को प्राप्त हुए। वह सुकुमाल हम लोगों के हृदयों में दृढ़ आत्मतेज जागृत करें।

योगी सनत्कुमार

(१)
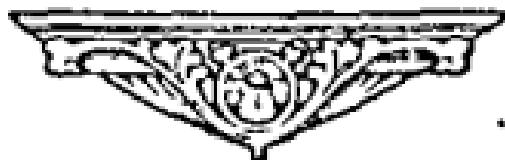
सम्राट सनत्कुमार भरत भूमि के अधीश्वर चक्रवर्ति महाराजा थे। उनके ऐश्वर्य, वैभव के सम्बन्ध में लेखनी को बढ़ाना अत्युक्ति होगा। क्योंकि उनके वैभव—उनके ऐश्वर्यका वर्णन करने के लिए लेखनी सर्वथा असमर्थ होगी। अनंत-ऐश्वर्य के स्वामी तो वह थे ही, किन्तु इसके साथ २ वह अनन्त सौन्दर्यता के भी स्वामी थे, उनकी सुन्दरता—उनका रूप—अहा! उनका रूप दर्शनीय था, नामकर्म ने विश्वके समस्त सुन्दर, मोहक, लावण्यमय परमाणुओं को एकत्रित कर उनकी सुन्दरता के समूहको सम्राट सनत्कुमार के मनोमोहक शरीर में ही लाकर रखदिया था। ऐसा कौन सुन्दर और मोहक पदार्थ होगा जो उनके रूपके सम्मुख लज्जित नहीं होजाता था। मानवगण—हां! मानवगण क्या देवता लोग भी उनकी आकर्षक सुन्दरता का अवलोकन कर आश्चर्यान्वित होजाते थे—मनोमुग्ध होजाते थे।

कामदेव उनकी निर्दोष सुन्दरता का अवलोकन कर लज्जासे अपना मुंह छिपालेता है। देवांगनाएं उनके सौंदर्य का दर्शन करने के लिए लालायित रहती थीं और कविगण उनकी सुन्दरता की प्रशंसा में अपनी लेखनी को यशस्वी बनाते थे। किन्तु सम्राट को अपनी सुन्दरता का कुछ भी अभिमान नहीं था—गर्व नहीं था—अहंकार नहीं था। यह

सभा स्थगित होने के पश्चात् ही सम्राट सनत्कुमार के सौंदर्य अवलोकनार्थ मानवलोक को प्रस्थान किया ।

(३)

प्रातः काल का समय था, प्रतापी मार्तंड ने अपनी स्वर्ण रश्मियों की प्रभा से अखिल विश्व में सौन्दर्यता की सृष्टि विस्तृत कर दी थी । महाराज सनत्कुमार अपनी व्यायामशाला में नित्य नियमानुसार व्यायाम करने में तन्मय थे, उन का समस्त मनोरम शरीर उस समय धूल धूसरित हो रहा था, उन के धूल धूसरित शरीर से सौन्दर्य की दिव्य प्रभा निकल कर समस्त स्थान को दीप्तवान बना रही थी । उसी समय देव वहां उपस्थित होकर प्रच्छन्न रूप से सम्राट की सुन्दरता का दिग्दर्शन करने लगा । वास्तविक सौंदर्य, प्राकृतिक सौंदर्य, वास्तव में अपने अन्तर्गत एक अद्भुत शक्ति धारण करता है । यह हो ही नहीं सकता कि वह मानवों का, देवताओं का और प्राणी मात्र का हृदय अपनी ओर आकर्षित न कर ले । प्राकृतिक सौंदर्य में वह आकर्षन है, कि वह मानवों के मन को अपनी ओर सरलता पूर्वक खींच लेता है । बनावट अकृत्रिमता, दिखावट, भड़काहट इस शक्ति से सर्वथा शून्य हैं, वह वंचक हैं, धोखेबाज़ है । संभवतः वह भी अज्ञानियों व भोले भाले व्यक्तियों को अपनी लुभावट में फंसाले, किन्तु वह क्षणिक है । परीक्षक और फिर भी देवता उस के चक्र में नहीं फंस सकते । अस्तु वह देव सम्राट के उस अकृत्रिम सौंदर्य का अवलोकन कर मुग्धित, चित्रित और आश्चर्य चकित हो गया । सम्राट का व्यायाम समाप्त हुआ । उन्होंने व्यायाम के कुछ समय पश्चात् ही निर्मल जल से स्नानादि क्रिया पूर्वक

दिव्य अमूल्य वस्त्रों को धारण किया। पश्चात् उन्होंने अपनी विशाल राज्य सभा में प्रवेश किया। प्रभादेव ने भी वहाँ से गुप्त रूप से प्रस्थान किया।

(४)

सम्राट सनत्कुमार अपने रत्न जड़ित मनोरम सिंहासन पर विराजमान थे। मंत्री गण तथा राज्य सभा के समस्त सभासद यथास्थान पर बैठे हुए थे। इसी समय द्वार रक्षक ने सम्राट को नमस्कार पूर्वक निम्न प्रकार निवेदन किया। 'महाराज ! आपकी सौंदर्यमयी प्रतिमा के दर्शन का इच्छुक एक सुन्दर व्यक्ति द्वार पर खड़ा हुआ है। जो अपने को देव नाम से प्रसिद्ध करता है, वह महाराज से राज्य सभा में प्रवेश करने की आज्ञा मांग रहा है"। सम्राट ने उन्हें सम्मान पूर्वक लाने की आज्ञा दी। प्रभादेवने राज्य सभामें प्रवेश किया। किन्तु यह क्या ! वह प्रभादेव महाराज सनत्कुमार के वर्तमान सौंदर्य का अवलोकन कर आश्चर्य में पड़ गया 'अरे ! वह सौंदर्य, वह एक क्षण प्रथम का सौन्दर्य सम्राट के शरीर पर से कहां गया ? जो सौंदर्य अभी २ व्यायामशाला में इनके शरीर से प्रकट होरहा था वह तो अब हमें इस समय इनमें प्रतीत ही नहीं होता। ओह ! रूप—सौन्दर्य-मानवों का सौन्दर्य ! इतना नश्वर ! इतना क्षणिक ! इतना कृत्रिम है ! जो क्षणमात्र में परिवर्तित हो जाता है। और इसी रूप—इसी सौन्दर्यता पर मुग्ध होकर प्राणी, मूढ़ प्राणी अपने आत्मज्ञान अपनी सुबुद्धि अपने सद्विवेक को तिलांजलि दे बैठता है। इसी नश्वर रूप पर—इस क्षणिक सुन्दरता पर इतना मनामुग्ध होजाता है। आश्चर्य है प्राणियों की बुद्धि पर" प्रभादेव के मस्तक पर विचार

की नरों उदित होते हुए अवलोकन कर सम्राटने पूछा—भद्र ! आज आपने किस हेतु से यहां उपस्थित होकर इस मानव सभा को कृतार्थ किया है और आप आते ही इस प्रकार विचार सागर में किस कारण से विलीन होगए । कृपया अपने आगमन के संबंध में विदित कर हमें संतोषित कीजिए।

प्रभादेव कहने लगा, सम्राट ! देवराज इन्द्र के द्वारा आपके सौन्दर्य की प्रशंसा श्रवणकर मैं उसका दिग्दर्शनकरने यहां आया हुआ था। मैं आपका सौन्दर्य अवलोकनकर अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ। वास्तवमें आपका सौन्दर्य अद्वितीय है, किन्तु मैं देखरहा हूँ, कि जिस सौन्दर्य का हमने प्रथम दर्शन किया था वह सौन्दर्य इस समय मुझे नहीं दिख रहा है। सौन्दर्य की इस प्रकार की दरिद्रता पर ही मैं विचार कर रहा था।

"असंभव ! आपका कथन सर्वथा असम्भव है। सम्राट का वह सौन्दर्य जो इसके प्रथम था, वही है। आपने इसे प्रथम कब देखा और आपको इसमें क्या कमी प्रतीत होती है ?" इस ध्वनि से सभा मंडप गूंज उठा।

प्रभादेव ने सभाको स्थिर करते हुए कहा "मेरा कथन सर्वथा सत्य है। मैं ने अभी गुप्त रूपसे सम्राट के सौन्दर्य का व्यायामशाला में जो निरीक्षण किया था, वह सौन्दर्य इसमें अब नहीं है। यदि आप लोग इसका प्रमाण चाहते हैं तो मैं इसी समय देने को तत्पर हूँ।"

प्रमाण ! अच्छा अपनी सत्यता का प्रमाण ही दीजिए। करते हुए सभासदों ने प्रभादेव से प्रमाण के लिए कहा उसने उसी समय एक कटोरा जल मँगाया और प्रधान मन्त्री को

अपने साथ लेकर वह सभा से बाहर चला गया। वहां उसने मंत्रीके समक्ष ही तिनके से एक बूंद जल निकाल लिया और उक्त जलका कटोरा राजसभा में रखदिया। पश्चात् उसने सभासदगणों से कहा "क्या आप बतला सकते हैं कि इस कटोरे का जल कितना कम होगया?" सभासदोंने कहा-इसमें का जल कुछ भी कम नहीं हुआ, यह पूर्ण है। देवने मंत्री की साक्षी पूर्वक जलके कम होनेका वृतान्त कहते हुए कहा "जिस प्रकार जलपात्र में से एक बूंद जल कम होजाने से उसमें प्रत्यक्ष में कोई न्यूनता प्रकट नहीं होती, किन्तु बूंद निकालने वाला उसे कम कह सका है—उसी प्रकार आप लोगों को सम्राट के सौन्दर्य में न्यूनता होते हुए भी सौन्दर्य की कमीका ज्ञान नहीं होता, किन्तु मैं इसको अपने ज्ञान द्वारा अनुभव कर रहा हूँ, मेरा कथन सत्य है" सभासदों को प्रभादेव की सार पूर्ण बातों पर विश्वास होगया। वह मौन होगए—प्रभादेव सम्राट सनत्कुमार के सौन्दर्य की प्रशंसा कर देवलोक को चला गया।

सम्राट ने भी उक्त दृश्य अवलोकन किया, वह विचारने लगे। "सौंदर्य! मेरा यह सौंदर्य इतना नश्वर! हां वास्तव में यह नश्वर है। सारा संसार नश्वर है और मैं इस नश्वर संसार की लीला निरीक्षण में ही तन्मय हो रहा हूँ। मैं, नहीं अबमें इस नश्वर सौंदर्य अवलोकन से तृप्त हो चुका, अब मैं अविनश्वर आत्मसौंदर्य का निरीक्षण करूंगा।" वह संसार से विरक्त हो गये, उन्होंने उसी समय अपने ज्येष्ठ पुत्र को [illegible] देकर दीक्षा धारण करली। अयोध्या नगरी का राज्य [illegible] चक्रवर्ति सनत्कुमार के बिना शून्य होगया।

दयालु हैं । तब क्या आप मेरी समस्त दुःख दायक व्याधियों को नष्ट कर देंगे ।

वैद्यराज ने कहा—आपकी कृपा से मुझमें यह शक्ति विद्यमान है ।

मुनीश्वर ने कहा—वैद्यराज ! यह शारीरिक व्याधि तो मुझे कुछ कष्ट नहीं दे रही है, किन्तु आप हैं वैद्य । अच्छा आप मेरी इस जन्म मरण जनित तीव्र व्याधि को जो मुझे निरंतर असीम कष्ट देरही है नष्ट कर दीजिए" !

देव मौन होगया—वह अपने वास्तविक रूपमें प्रकट होकर महात्मा सनत्कुमार के चरणों पर गिर कर उनकी स्तुति करने लगा-महात्मन ! इस व्याधि के नष्ट करने में आप ही समर्थ हैं मैं तो केवल आपका सेवक था आपकी शारीरिक निस्पृहता,आपका योग साधन,आपकी आत्म तन्मयता आदर्श है, आप सर्व शक्तिमान हैं, आप वास्तव में निस्पृह योगी हैं, आप धन्य हैं ।" स्तुति करके देव अपने स्थान को चला गया। महात्मा सनत्कुमार ने तीव्र व्याधि जनित परीषह को-अधिक समय पर्यंत धैर्यता पूर्वक सहन करते हुए अपनी दिव्य आत्म शक्ति का पूर्ण संयम प्रकट किया और अपने तीव्र योगिबल द्वारा आत्मगुण घातक कर्मों को नष्ट कर दिव्य कैवल्यज्ञान शक्ति का लाभ किया । महात्मा सनत्कुमार दिव्य आत्म सौंदर्य को प्राप्त हुए इन्होंने वह सौंदर्य [illegible] प्राप्त [illegible] अजर थी अनन्त थी और अमर थी यह महात्मा हमारे हृदय [illegible] मन्दिर की शुद्धि करें ।

विषयों के ज्ञान से उनका हृदय परिप्लुत होगया था। उन्होंने समस्त सिद्धान्तों और दर्शनों का अध्ययन बड़ी दृढ़ता के साथ किया था। क्रमशः वह यौवन सम्पन्न हुए। रूप माधुर्यता और शरीर संगठन के साथ २ अनेक उच्च सद्गुणों के समूह से वह परिपूर्ण हो गये थे।

वर्तमान समय का धनिक युवक समाज जहां विविध धन वैभव के मद में मदोन्मत्त होकर इस यौवन पूर्ण अवस्था में अपने को विषय विलास की चरमतम सीमा को पहुँचा देते हैं, जहां वह विलास पूर्णता की सामग्रियों को एकत्रित करने और उन का उपभोग करने में अपनी समस्त जवानी की शक्ति का अपव्यय कर देते हैं, आमाद प्रमोद, हास्यविलास, कामोद्दीपन, इन्द्रिय तृप्तिता के अतिरिक्त उनमें सद्ज्ञान, विवेक सदाचरण आदि के उपार्जन करने व संरक्षण करने की जहां उन्हें किंचित् भी चिन्ता नहीं रहती। वह इन्द्रियों की विषयाभिलाषिणी शक्ति के सम्मुख अपने आप को सर्व प्रकार से झुका देते हैं। उसके वेतन भोगी गुलाम से बन जाते हैं। यहां तक कि अनेक दुष्कृत्यों, अत्याचारों और व्यभिचार आदि कुकृत्यों के करने में वह किंचित भी लज्जित और शंकित नहीं होते। वहां हमारे आदर्श युगल कुमार अनन्त राज्य वैभव संपन्न होने पर भी विषय विलास, इन्द्रिय तथा मन सम्बन्धी दुर्विचारों के बन्धन से सर्वथा निर्मुक्त थे। उन का अधिकाधिक समय सद्ग्रंथ मनन और आत्म गुणोन्नति सम्बन्धी विवेक विज्ञान में ही व्यतीत होता था, उनका सद्व्यसन था केवल धार्मिक विवेचन और सत्कर्तव्य निष्ठता।

महाराज अपने प्रिय गजेन्द्र की इस असामयिक मृत्यु के सम्बन्ध में विचार करने लगे। "ओह! काल ने इतनी शीघ्रता से अचानक ही उस मेरे प्यारे गजेन्द्र को अपना ग्रास बना लिया। क्या इसके प्रथम यह कल्पना की जा सकती थी कि एक क्षण में उसका उन्नत शरीर इस प्रकार नष्ट हो जायगा? ओह! काल का शस्त्र कितना भयंकर और अमोघ है कि उस की तीक्ष्ण धार के नीचे पड़कर कोई भी प्राणी एक क्षणमात्र को भी संरक्षित नहीं रह सकता है। ओह! मैं भी तो इसी काल के शस्त्र के नीचे निःशंक हुआ क्रीड़ा कर रहा हूँ। तब क्या मुझे भी एक दिन इस प्रकार काल का भक्ष्य बनना पड़ेगा? अवश्य! तब मुझे इस से संरक्षित रहने का और अमर बनने का शीघ्र प्रयत्न करना चाहिए। इस का उपाय है केवल मात्र आत्मोद्धार और उसका साधन विषय भोगों तथा राज्य वैभव त्याग। सब मुझे इस विलास वासना बन्धन से अवश्य निर्मुक्त होना चाहिए। महाराजा संजयन्त का हृदय एक क्षणमात्र में वैरागी बन गया. उन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्र सजयन्त को अपना राज्यअधिकार प्रदान करना चाहा, किन्तु उन्होंने उसे स्वीकार नहीं किया। उन्होंने भी उस का त्याग करते हुए विनम्र स्वर से महाराज को निम्न प्रकार उत्तर दिया। "पिता जी! जिस राज्य वैभव को अनित्य और असेवनीय समझ कर उसे त्याग कर उस के बंधन से आप निर्मुक्त हो रहे हैं मैं उसी बन्धन में फंसकर अपने आत्मोन्नति के पथ को अन्धकारमय नहीं बनाना चाहता; मैं भी आप के साथ ही दीक्षा लेकर अपना पूर्ण आत्मोद्धार करूंगा"। सजयन्त ने राज्य नहीं लिया, वह भी पिता के साथ ही दीक्षा लेकर तपस्वी बन गए।

(३)

मन्दुर वन की गुफा में महात्मा संजयंत तीव्र तपश्चरण में निमग्न थे। उन्होंने महीनों के अनाहारक व्रत द्वारा अपने शरीर और इन्द्रिय वासना और मनोविकारों को शुष्क कर दिया था, उन का मन वश में हो गया था, वह सिंह व्याघ्र आदि हिंसक जंतुओं से परिपूर्ण गुफाओं में निश्चलता पूर्वक अपने आत्मध्यान में संलग्न रहते थे। कठिन से कठिन शारीरिक यातनाएँ, घोर से घोर पशुजनित और अज्ञानता से उत्पन्न हुए उपसर्गों के सन्मुख उन्होंने अपने मन इन्द्रिय और शरीर को निश्चल और अकंप बना लिया था। ग्रीष्मऋतु की प्रचंड सूर्य रश्मियों के सन्मुख, वर्षाकाल की प्रबल जल वृष्टि के सन्मुख और असहनीय शीतकाल की शुष्क वायु के सन्मुख वह अपने आत्मचिंतन में—अपने ध्यान में—मग्न रहते थे, अपने अध्यात्म रसास्वादन में तन्मय रहते थे। इस प्रकार उन्होंने समस्त कठिनाइयों के सन्मुख अपने को अजेय बना लिया था—

शीतकाल का समय था, महात्मा संजयन्त पद्मासन से अपने योगसाधनमें निमग्न थे, वह अभूतपूर्व अध्यात्मपियूष का पान कर रहे थे। विद्युद्दंष्ट्र अनेक विद्याओं का स्वामी क्रोध प्रकृति का एक उद्दंड राजपुत्र था। वह अपने सुन्दर वायुयान में बैठा हुआ, आकाशमार्ग से शीघ्रता पूर्वक गमन कर रहा था। उसका वह वायुयान तपश्चरण करते हुए महात्मा संजयन्त के ऊपर तक आया, किन्तु महात्मा के तपश्चरण के प्रभाव से उसका उल्लंघन कर वह आगे न जा सका और उसका विमान चलने से रुक गया। उसने अपनी समस्त विद्याशक्ति से उस

वायुयान को आगे बढ़ाने का प्रयत्न किया, किन्तु वह वहां से किंचित् भी टस से मस न हुआ। अस्तु, उसे बलात् अपने विमान को रोक कर नीचे पृथ्वीपर उतरना पड़ा,नीचे आकर उसने शुष्क शरीर महात्मा संजयंत को ध्यान में निमग्न विराजमान हुए देखा। महात्मा संजयंत को अपने विमान स्तंभित होने का कारण समझकर उसके क्रोध का कोई ठिकाना नहीं रहा और उन अचल शरीर मुनीश्वर के ऊपर वह अकारण ही अपनी विद्याबल से अनेक प्रकार के भयंकर उपद्रव करने लगा। उसने भीषण जलकी वर्षा द्वारा, भूत पिशाचों के भयंकर शब्दों द्वारा, गरजते हुए सिंह और फुंकारते हुए सर्पों के द्वारा उन्हें आत्म ध्यान से विचलित करना चाहा, किन्तु योगिराज संजयंत सुमेरु- नहीं सुमेरुसे भी अधिक अचल और स्थिर रहे। उन्होंने उन समस्त भयानक उपद्रवोंके सम्मुख अपने आत्म ध्यान को भंग नहीं होने दिया। वह अपने योगसे किंचित् भी चलित नहीं हुए। दुष्ट प्रकृति दुर्जन पुरुष अपने दुष्कृत्यों द्वारा सज्जन व्यक्तियों को दुखित करता हुआ जब विजय प्राप्त नहीं कर पाता है तब उसके क्रोधकी ज्वाला और भी अधिक भयानक रूपसे भड़क उठती है,वह विचार शून्य होकर मदोन्मत्त पशु की सदृश कुकृत्यों के करने के लिए कटिबद्ध हो जाता है। अनेक यातनाएँ देने पर भी जब उस दुष्ट प्रकृति विद्युद्दंष्ट्र ने महात्मा संजयंत को अत्यन्त स्थिर, शान्त और गंभीर मुद्रा युक्त ध्यान निमग्न देखा तब वह अपने क्रोध को नहीं संभाल सका और अपनी विद्याके बलसे योगारूढ़ महात्मा को उठा लाया और भीषण वेगसे बहने वाली सिंहवती सरिता के संगम स्थान पर उनको डाल कर अपने हृदय को संतोषित

में किंचित् भी कमी नहीं की थी, किन्तु अभी उनके आत्म कल्याण की पूर्णता में कुछ कमी रह गई थी। अस्तु, पूर्व कर्मों ने अपनी शक्ति का प्रयोग उनकी आत्मा पर किया—सिद्धवर्ती नदी के समीप निवास करने वाले मनुष्य बड़े भीरुहृदय भयभीत और भूत पिशाचों के मिथ्या भ्रम से सदैव शंकित और ग्रसित रहते थे। आज अनायास ही सन्ध्या के समय किसी कार्य वशात् वह उस सरिता के तट पर आये हुए थे। जो उन्होंने शीत से संकुचित उन महात्मा के नग्न शरीर को देखा तो उन्हें देख कर उनको पिशाच जनित आशंका आयुत हो उठी और बार २ उनके शरीर का अवलोकन कर उनका हृदय उसके भयसे परिपूर्ण होगया और उन दुष्ट प्रकृति मनुष्यों ने उन महात्मा को पिशाच समझ कर "यह हमारा भक्षण करने आया है" ऐसी धारणा से उन्हें बड़े २ पत्थरों के द्वारा मारना प्रारंभ किया और उन्होंने उनके शरीर पर बहुत समय तक पत्थरों का आघात किया। पश्चात वह उन्हें मृतक सदृश समझ कर बड़ी प्रसन्नता से अपने ग्रामको चल दिए।

महात्मा संजयन्तने उनके द्वारा किए गए उन समस्त उपद्रवों को बड़ी शांति से सहन किया,इस अपूर्वध्यान की शक्ति के कारण उनके आत्म शक्ति घातक कर्म तत्काल नष्ट होगए और अपने दिव्य आत्म तेज का प्रकाशित करते हुए उन्होंने विश्व पदार्थ प्रदर्शक अलौकिक केवल ज्ञान प्राप्त किया और पश्चात समस्त कर्मों को नष्ट कर निर्वाण को प्राप्त किया। देवताओंने वहां उपस्थित होकर उनके अद्भुत धैर्य का गुणगान करते हुए उनका निर्वाण कल्याणक मनाया। वह महात्मा संजयन्त अनन्त सुख स्थान मोक्षको प्राप्त हुए।

जब यह राजकुमारी के हृदय में मदन के वेगको उत्पन्न करने वाली पूर्ण यौवनसम्पन्न हुई तब अनेक युवराज उसे प्राप्त करने के लिए लालायित हो उठे किन्तु महाराजाने अपनी इच्छानुकूल वर प्राप्त न होनेके कारण स्वयंवर द्वारा उसका पाणिग्रहण करना उचित समझा।

अनेक देशोंके रूप, कला और यौवनसम्पन्न राजकुमार कन्याके रूप द्वारा आकर्षित होकर स्वयंवर मडपमें पधारे थे। दैवयोग से महाराजा दशरथ भी भ्रमण करते हुए स्वयंवर मंडपमें पधारे। जौहरी जिस प्रकार रत्नराशिमें से उत्तम रत्न की परीक्षा करके उसे प्राप्त करता है इसी प्रकार प्रवीण राजकुमारीने अनेक राजकुमारों के समूहमें बैठे हुए महाराजा दशरथके सम्पूर्ण गुणसम्पन्न हृदयमें अपनेको विराजित कर दिया उनके गलेमें वरमाला डाल दी।

राजकुमार जल उठे। उन्होंने अपनी क्रोधाग्नि शान्त करनेके लिए महाराजा दशरथसे युद्ध किया,किन्तु कर्कईने इस चातुर्यतासे रथ चलाया कि शत्रुओंके छक्के छूट गए-महाराजा दशरथ विजयी हुए। उन्होंने अपनी प्रियाकी इस रथ चातुर्यता पर मुग्ध होकर वरदान देना चाहा। चतुर कर्कईने जब मुझे आवश्यकता होगी तब लेलूंगी, आप मेरे वरदानको अपने कोषमें रखिये ऐसा कहते हुए महाराजाको प्रसन्न करके उन्हें अपने वचनबन्धनमें बद्ध कर लिया। वे वचनबद्ध होगए

विनीतानगरीमें आज आनन्दका सिंधु उमड़ उठा है। सम्पूर्ण नगर तोरणादि द्वारा बहुत ही उत्तमताके साथ सजाया गया है, मंगलगानके दिव्यस्वरसे आकाशमंडल गूंज रहा है।

आज महाराजा दशरथके यहां धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पुरुषार्थों जैसे चार पुत्ररत्नोंका जन्म हुआ है। राजा दशरथने मनोवाञ्छित दान देकर इस मंगलोत्सव को सार्थक बनाया था। उनका क्रमशः रामचन्द्र(पद्म), लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न इस प्रकार नामकरण किया गया।

समस्त कुमारोंमें कुमार रामचन्द्रकी शोभा अभूतपूर्व ही थी। वह सुन्दर वस्त्राभूषणोंसे शोभित अपनी रूप माधुर्यतासे कामदेवके रूपको लज्जित करते थे। कुमार लक्ष्मण भी सुन्दरतामें अद्वितीय थे अन्य दोनों कुमार भी अत्यंत स्वरूप तथा गुणोंमें परिपूर्ण थे।

चारों कुमार अनेक विद्याओंका अध्ययन करने लगे। अल्प समयमें ही वे शास्त्र, शस्त्र और समस्त लौकिक विद्याओं में परिपूर्ण होगए।

उनकी वीरता और गुणोंकी प्रशंसासे मानवोंके हृदय व्याप्त होने लगे। इस प्रकार अनेक उत्तम कलाओं और बल विक्रम, पराक्रम वृद्धिके साथ २ वे चारों कुमार वृद्धिको प्राप्त होते हुए माता, पिता का हृदय अनुरंजन करने लगे।

मिथिलापुर नामक प्राचीननगरमें महाराजा जनक न्याय पूर्वक राज्य करते थे, उनके रूप-गुण-संपन्ना विदेहा पटरानी थी।

महारानी विदेहाके सम्पूर्ण सुलक्षण मंडित, रूप लावण्य की मनोरम प्रतिमा सीता नामक कन्या और सूर्यमंडल समान मुखवाला प्रतापी भामंडल का जन्म हुआ। दैवयोग से कुमार भामंडलको उसका पूर्व शत्रु दैत्य जन्मके समय ही हरण कर ले गया, किन्तु बालककी सरल और मनोहर मुख-कान्तिको देखकर उसका हृदय करुणासे भर आया। अस्तु, उसने बालकका वध नहीं किया किन्तु मनोहर कुंडलोंसे उस का कर्ण आभूषित कर उसे एक सुन्दर उपवनमें छोड़ दिया। विद्याधरोंके स्वामी महाराजा चन्द्रगति वायुयान द्वारा सप-त्नीक विहार कर रहे थे। बाललीलामग्न उस सुन्दर कुमार पर अचानक उन की दृष्टि पड़ी, उसके सुन्दर और सरलता-पूर्ण मुखको देखकर उन्हें स्नेह हो आया। अस्तु, उन्होंने प्रसन्नता पूर्वक उसे उठाकर उसका पुत्रवत् पालन किया। आमइल सुखपूर्वक क्रीड़ा करता हुआ वृद्धि पाने लगा।

महाराजा जनक और रानी विदेहा को पुत्र हरण का शोक तो अत्यन्त हुआ किन्तु बालिका सीता के सौंदर्यपूर्ण सरल मुख को देखकर उन्होंने सन्तोष धारण कर लिया।

राजकुमारी सीता वयवृद्धि के साथ ही विद्या, कला चातुर्यता और रूपमाधुर्यता में वृद्धि पाप्त होने लगी क्रमशः

उसके शरीर में यौवन ने प्रवेश किया यौवन के प्रथम प्रवेशने उसके सौंदर्यको अपूर्व बना दिया । वह मंजुल पुष्पोंसे सज्जित नवीन लतिकाके सदृश मानवोंके हृदयों में आनन्द स्रोत सरसाने लगी ।

मयूरमाला देशका सम्राट् आतंगल बहुत ही उद्दंड और क्रोधी प्रकृतिका था । वह कुत्सित वासनाओं में सदैव लिप्त रहा करता था, उसकी विलास वासनाएं बहुत बढ़ी हुई थीं, उसे महत्वाकांक्षाओंने गुलाम बना रक्खा था, उसने अपना सम्पूर्ण सैन्यसमूह लेकर मिथिला नगरी पर आक्रमण किया । महाराजा जनक का सैन्यबल कमजोर था । अस्तु, उन्होंने अपने मित्र महाराजा दशरथ से सहायता मांगी ।

कुमाररामचन्द्रने अपनी अलौकिक वीरता से संसार को चमत्कृत कर दिया था । कुमार लक्ष्मण भी अग्रजके अनुकूल ही पराक्रममें अद्वितीय थे, अस्तु महाराजा दशरथने दोनों कुमारोंको महाराजा जनक की सहायता के लिये भेज दिया ।

राजकुमार रामचन्द्रने इस कुशलता और वीरता के साथ संग्राम किया कि उस उद्दंड आतंगल की समस्त सेनाके छक्के छूट गए और वह पराजित होकर भागने लगी । कुमार रामचन्द्रने उसे जीता ही पकड़ लिया और पश्चात् उसके क्षमा याचना मांगनेपर उसे बन्धन से छोड़कर स्वतंत्र कर दिया ।

महाराजा जनक कुमार रामकी वीरतापर अत्यन्त मुग्ध

हुए। उन्होंने सुन्दरी सीताका पाणिग्रहण रामचन्द्रजीके साथ करनेका दृढ़ संकल्प कर लिया और सम्मानपूर्वक विदा किया।

विनोदप्रिय नारदने सीता के सौंदर्य की प्रशंसा सुन रक्खी थी, उन्होंने उसके अवलोकनार्थ महाराजा जनक के महलों में प्रवेश किया। कुमारी सीता विनोदपूर्वक दर्पणमें अपना मुखावलोकन कर रही थी। अतायास ही दर्पणमें एक भयानक जटाजूट मूर्ति देख वह भयातुर होकर, "हाय! यह किस राक्षसकी मूर्ति है" इस प्रकार कहती हुई पृथ्वी पर गिर पड़ी। उसके करुणापूर्ण शब्दोंको श्रवण कर द्वारपाल नारदजी के पकड़नेको उद्यत हुए, किन्तु नारदजी अपनी विद्याके बलसे उनके द्वारा बचकर एक सुन्दर उद्यानमें जापहुंचे। कुमारी सीताकी धृष्टतापर उन्हें अत्यन्त क्रोध आया। उसे दुःखित करनेकी इच्छासे उन्होंने उसका एक सुन्दर चित्रपट बनाकर कुमार भामण्डल को उस के रूपपर आकर्षित करा दिया। इस प्रकार वे अपना विनोद करते हुए अन्य प्रदेशों में विचरण करने लगे।

कुमार भामण्डल सीताकी सुन्दरता पर अत्यन्त मुग्ध हुए। कामदेवने उनके शरीर पर अपनापूर्ण प्रभाव डाला।

विद्याधराधीश महाराजा चन्द्रगतिको कुमार के मित्रों द्वारा उनकी विकलताका समाचार ज्ञात हुआ। अस्तु, उन्होंने कुमार को सुखी बनानेके लिए महाराजा जनकको अपने

विद्याधर दूत द्वारा कौशल से बुलाकर राजकुमारी जानकीकी कुमार भामंडल के लिए याचना की।

महाराज जनकने कुमार रामको सीताजीके देनेका दृढ़ संकल्प कर लिया था, कुमारी सीता भी रामचन्द्रजी के गुण सौंदर्यपर मुग्ध हैं इस बातोंने तो उन्हें इस कार्य में और भी दृढ़ प्रतिज्ञ बना दिया था। अस्तु, उन्होंने महाराजा चन्द्रगति की आज्ञा पालनमें अपनी असमर्थता दिखाई और रामचंद्रजी के पराक्रमकी प्रशंसा करते हुए उन्होंने अपने मनोगत विचारों को प्रगट कर दिया।

महाराजा चंद्रगतिका हृदय जल उठा। वह रामचंद्र जीकी प्रशंसाको सहन नहीं कर सके। उन्होंने कहा—यदि रामचंद्रजी पराक्रममें अद्वितीय हैं तो वे मेरे देवोपुनीत धनुषको चढ़ावें। यदि वे इन धनुषोंको चढ़ा सकेंगे तो समझा जावेगा कि उनमें कुछ वीरत्व है अन्यथा आपको बलात् कुमार भामंडल के लिए कुमारी सीताको देना पड़ेगा।

महाराजा जनकको रामचंद्रजीकी अपूर्ववीरता पर विश्वास था, अस्तु उन्होंने इस शर्तको स्वीकार कर लिया।

दोनों धनुष जनकपुरी में रक्खे गये और कुमारी जानकीके स्वयंवर की योजना होने लगी।

(३)

राजकुमारी जानकीके स्वयंबर की तैय्यारियां होने लगीं,

प्रायः सभी देशोंके राजकुमारोंको इस स्वयंवरमें आमंत्रित किया गया था। राजकुमारोंकी शक्ति तथा साहसकी परीक्षाके लिए दोनों धनुष स्वयंवर मंडपमें लाये गए। जानकीकी रूप माधुर्यताको देखतेही राजकुमारोंका हृदय उसके प्राप्त करनेकी इच्छासे धनुष चढ़ानेके लिए आकुलित हो उठता था, किन्तु धनुषों की प्रचंडता और भयानकता पर दृष्टि डालतेही उनका सारा साहस नष्ट हो जाता था।

परीक्षा होने लगी, सम्पूर्ण राजकुमार जानकीके गुणोंमें आकर्षित होकर धनुष चढ़ाने की चेष्टासे उठे, किन्तु उसकी भीषणता देखते ही उन्हें निराश होकर अपना २ स्थान ग्रहण करना पड़ा।

समस्त राजकुमारोंको इस प्रकार पराजित होते देख कर कुमार लक्ष्मणकी भुजाएं साहससे फड़कने लगीं। उन्होंने अग्रज रामचंद्रजीसे धनुष चढ़ानेकी आज्ञा मांगी, रामचंद्रजी उठे और वज्रावर्त धनुषको चढ़ाकर समस्त पृथ्वीमण्डलको आश्चर्यान्वित करने लगे। जानकी का हृदय हर्षोल्लाससे गद्गद हो उठा। उसने विनम्रतापूर्वक राजकुमार रामके गलेमें वरमाला डाल दी। कुमार लक्ष्मणने भी द्वितीय धनुष सागरावर्तको चढ़ाकर अपने अद्भुत पराक्रमका परिचय दिया। जानकी को प्राप्तकर रामचंद्रजीने सुखपूर्वक अयोध्यामें प्रवेश किया।

एक समय महाराजा दशरथ अपनी उच्च अट्टालिकाके

शिखर पर विराजमान हुए जगतमोहिनी प्रकृतिके साम्राज्यका दिग्दर्शन कररहे थे। उनकीदृष्टि आकाशमें मेघोंद्वारा बने हुए उत्तुंग गजराजके सुडौल अंगों पर लगी हुई थी किन्तु क्षण मात्र में उस गजराजको विलय होते देखकर उनके हृदय में घोर आंदोलन होने लगा। वे वैराग्य युक्त होगए. इस दृश्यने उन्हें वैराग्यके दिव्य उद्यान में खड़ा कर दिया। वे समस्त राज्य वैभव, ऐश्वर्य और मनमोहक विषयों को इंद्रधनुष, मृगतृष्णा और चपला के समान नश्वर मोहक एवं क्षणिकता पर विचार करने लगे। क्रमशः उनका हृदय सांसारिक प्रलोभनों से हटने लगा। उनके हृदयमें समताका साम्राज्य छा गया। उन्होंने युवराज रामको राज्य देकर तपश्चरण करने का दृढ़ संकल्प किया।

राजकुमार भरतका हृदय बाल्यावस्था से ही आमोद प्रमोदसे हटा रहता था। उन्हें संसारकी मोहक सामग्रियोंमें कोई आनंद अथवा सुखशांति कारक पदार्थ ज्ञात नहीं होता था। अस्तु, जब उन्होंने पिता के मनोगत विचारों को समझा तब वे भी उनके साथ तपके लिए वन जाने का निश्चय करने लगे।

महारानी केकईके हृदयमें पुत्रमोह उमड़ उठा। उन्होंने महाराजा दशरथ से राजकुमार भरत को राज्य देने के लिए कहते हुए, उन्हें पूर्व वचनों का स्मरण कराया। प्रतिज्ञाबद्ध महाराजाने निशंकता तथा दृढ़तापूर्वक अपने वचनोंका पालन किया तथा लोकविरुद्ध और अप्रिय होते हुए भी "कुमार भरत ही इस राज्यका स्वामी होगा" यह कह कर रानी केकई को संतोषित किया। कुमार भरत कोशलदेशके राजा बनाए गए।

पितृभक्त रामचंद्र जी अपने राज्याधिकारको त्याग बनवास जाने के लिए सहर्ष तैयार हो गए। कौशलदेश का राज्य एवं महलोंके सुखोंकी अपेक्षा उन्हें पितृभक्ति और कर्तव्यपालन का मूल्य कहीं अधिक प्रतीत हुआ। वनवासमें होनेवाली अकथनीय वेदनाएं, एकांतवास के कष्ट और राज्यका प्रलोभन उन्हें अपने सत्य प्रणसे नहीं डिगा सका, वे वनवासको चल दिए। भ्रातृस्नेही लक्ष्मण और पतिप्राणा सीता भी उनके चिरस्नेहके बंधन तोड़ने में असमर्थ हुए और वे भी रामचंद्र जी के साथ वनवासको चल दिये। अयोध्यानिवासियों के हृदय में इनके निर्वासन से घोर शोक का साम्राज्य छा गया। माताओं के शोकका तो कोई ठिकाना न रहा। वे अधीर हो उठीं किन्तु रामचंद्र जी द्वारा किए गए आश्वासन से उन्हें कुछ संतोष हुआ और वह अपने हृदय को थाम कर रह गईं।

(४)

महात्मा रामचंद्रजी घोर जंगलों में विचरण करने लगे, हिंसक जीवों से श्याम वनों और भयानक अटवियों को उन्होंने अपना निवास-स्थान बना रक्खा था किन्तु इन घोर जंगलोंमें विचरण करते हुए भी उनका हृदय किंचित् व्याकुल नहीं होता था। वे इस भ्रमण में प्रसन्न थे। वे वृक्षों के सुमधुर फलोंसे अपनी क्षुधा तृप्ति करते हुए, महा रमणीक कांचरवा नदीको पार कर दण्डगिरि के समीप पहुंचे उस गिरिकी मनोमोहकता तथा स्थानकी रमणीकताने उनके हृदयको आकर्षित कर लिया व कुछ समय विश्राम लेनेके लिए वहीं ठहर गए।

कुमार लक्ष्मण प्रकृतिके पूर्ण उपासक थे, वहांपर प्रकृतिका पूर्ण साम्राज्य था। समस्त वन अपूर्व शोभा धारण किए

सुन्दर आ पड़ी। उसे देखते ही उसका हृदय मदनके पंच बा-
णोंसे विदीर्ण होने लगा, उसकी सारी सद्बुद्धि नष्ट होगई और
वह युद्धमें आना भूलकर सुन्दरी सीताके प्राप्त करनेका उपाय
सोचने लगा। अपनी विद्याओं द्वारा उसके प्राप्त होनेका
उपाय जानकर वह बहुत प्रसन्न हुआ। उसने सिंहनाद किया
सिंहनादकी ध्वनि सुनते ही भाईपर विपत्तिकी आशंकासे राम-
चन्द्रजी अकेली सीताको छोड़कर युद्धको चल दिए और राव
ण ने निराश्रिता एकान्तवासिनी सीताको वायुयानमें बैठाकर
अपनी राजधानीको प्रस्थान किया।

लक्ष्मणजी युद्धमें विजयी हुए, किन्तु अनायास ही राम-
चन्द्रजीको आते देखकर उनके आश्चर्यका ठिकाना न रहा, और
रामचन्द्र जी द्वारा सिंहनादका समाचार सुनकर उनका हृदय
भावी आपत्तिकी आशंकासे अधीर हो उठा। वे शीघ्र ही लौट
आए, किन्तु लौटनेपर उन्होंने सीताजीको नहीं देखा। वे शीघ्र
ही समझ गए कि कोई दुष्ट मनुष्य छलसे सीताजीका हरण
कर लेगया है। इस दुर्घटना से रामचन्द्रजीका हृदय सीताकी
वियोगाग्निसे सन्तप्त होगया। उनके गुणोंका स्मरण करते २
उनका हृदय आकुलित हो उठा। यद्यपि लक्ष्मणजी उनका शोक
दूर करनेके लिए बहुत सान्त्वना देते थे किन्तु उनके हृदयका
दुःख कम नहीं होता था। अस्तु वे दोनों मिलकर सीताजीकी
खोज करनेके लिए चल दिए।

५

किष्किन्धानगरका अधिपति अनेक विद्याधरोंका ईश राजा
सुग्रीव था। सुन्दरताका आदर्श वनिता सुतारा उसकी पत्नी थी।
वह सच्चरित्रा और पतिव्रता थी। उसकी रूपमाधुर्यताकी प्रशंसा-

चंद्रजी ने दृढ़ता के साथ उन विद्याधरों को उत्तर दिया कि हे विद्याधरो! आप इस प्रकार अन्यायका बदला देनेसे क्यों डरते हैं? क्या रावण कोई यमराज तो है ही नहीं जो हम लोगों का भक्षण कर जायगा। हमें न्याय और धर्मकी रक्षाके लिये अवश्य ही युद्ध करना चाहिए। रावण ने अन्याय किया है। वह कितना ही बलशाली क्यों न हो उस का पतन अवश्य ही है। हमें उस से डरने की कोई बात नहीं है और मैं तो प्रण कर चुका हूँ कि सीताको प्राप्त किए बिना मैं एक क्षण भी नहीं रह सकता। मुझे अन्य सुन्दरी विद्याधर कुमारियों की आवश्यकता नहीं है, मुझे तो अपनी सीतासे ही प्रयोजन है। श्रीरामचंद्रजी के वीर शब्दोंको सुनकर विद्याधरों के हृदय में अपूर्व साहस का उदय हुआ। वे समस्त अपनी २ सेनाओं का संगठन कर रावण से युद्ध करने के लिए तैयार हो गए।

युद्ध की तैयारियां होने लगीं, प्रतापी रामचंद्रजी की सहायता के लिए अनेक विद्याधर अपनी सेनाएं लेकर सम्मिलित हुए, युद्ध का बाजा बजने लगा, रामचन्द्रजी की प्रलयकाल जैसी सेना लंका के समीप युद्धार्थ पहुँच गई।

रावणको भी समस्त समाचार विदित हुए, वह रामचंद्र जी से युद्ध करने के लिए अपनी सेनाको सङ्गठित करने लगा।

बुद्धिमान विभीषण ने रावण को विनम्र होकर मधुर वाक्यों द्वारा अनेक बार संबोधित किया और सीता जी को

रामचन्द्रजी को दे देने की प्रेरणा की किन्तु दुर्बुद्धि रावण ने उसका घोर तिरस्कार किया। अस्तु, वे अपमानित होकर न्यायी रामचन्द्रजी की सेना में सम्मिलित होने की इच्छा से ससैन्य चल दिये!

रावण का भाई विभीषण युद्ध करने के लिये आरहा है इस धारणा से रामचन्द्रजी की सैन्य युद्ध के लिए कटिबद्ध हो गयी, युद्धका बाजा बजने लगा, किन्तु विभीषणने दूर से ही संकेतद्वारा युद्ध करने की अनिच्छा प्रगट की और एक बुद्धिमान दूत द्वारा रामचन्द्रजीसे अपने सम्मिलित होनेके विचार प्रगट कराए।

शत्रुपक्षके एक पराक्रमी और रावणके सहोदर भाईका विश्वास करना रामचन्द्र जी के सभी मन्त्रियों और राजाओं ने अस्वीकृत किया, किन्तु रामचंद्रजी ने अपनी महानता और शरणवत्सलताका परिचय देते हुए सम्मानपूर्वक विभीषणको आने की सूचना दी।

विभीषणका हृदय रामचन्द्रजी की इस समता और सहृदयतासे आर्द्र होगया। वे रामचंद्रजीके चरणोंमें आगिरे! रामचन्द्र जी ने मधुर वचनों द्वारा उन का अभिवादन किया और दोनों में मित्रता का दृढ़ बंधन बंध गया।

(६)

प्रवीण मन्त्रियों और अपनी बुद्धिमती भार्या मंदोदरी

द्वारा संबोधित किया हुआ भी अपनी शक्ति और ऐश्वर्य के मदमें चूर हुआ रावण न्याय, राजनीति और सुबुद्धिका तिरस्कार करता हुआ महात्मा रामचंद्र जी से युद्ध करने को तैयार हुआ।

भीषण युद्ध होने लगा, दोनों ओर के वीर सामन्त अपने २ पराक्रम में अतुलनीय थे। परस्परके संभाषण, तिरस्कार द्वारा प्रचंड हुई युद्धाग्नि में दोनों ओर के सैनिक भस्म होने लगे।

युद्ध करते हुए अनेक वीर आहत हुए, अंतमें रामचंद्र जीने पराक्रमी कुंभकरण और लक्ष्मणजीने इन्द्रजीत को युद्ध करते हुए पकड़ लिया।

रावण, विभीषणके ऊपर अत्यन्त क्रुद्ध था। अतएव उस ने उसपर प्राणनाशक तीरका लक्ष्य किया, किन्तु वीर लक्ष्मण ने उसे बीचही में नष्ट कर डाला। रावण की क्रोधाग्नि भड़क उठी। उसने रक्तवर्ण होकर इंद्र द्वारा प्राप्त किए शक्तिबाणका लक्ष्मण पर आघात किया, बाण के आघात को लक्ष्मण जी न रोक सके और उसके लगते ही कुम्हलाए कुसुमकी सदृश पृथ्वी पर गिर पड़े।

युद्ध समाप्त हुआ। रामचंद्रजी के दलमें शोक साम्राज्य छागया। रामचंद्रजी भ्रातृस्नेहसे व्याकुल हो उठे। लक्ष्मणजी को होशमें लानेके अनेक उपचार किए गए किन्तु सब निष्फल

हुए। ठीक इसी समय एक अपरिचित व्यक्तिने यहां पर प्रवेश किया। उसने उस शक्ति के नष्ट होने का इस प्रकार उपाय बतलाया कि अयोध्या आधीनस्थ द्रोणमेघ राजा की कन्या वैशल्या अत्यन्त पवित्रआत्मा है, उसने पूर्व जन्ममें घोर तपश्चरण किया था। अस्तु, उस में ऐसा प्रभाव है कि उसके स्नान के जल के स्पर्श से अनेक शक्ति द्वारा आघातित व्यक्ति चैतन्य लाभ को प्राप्त कर लेते हैं, मैं स्वयं इसका अनुभव कर चुका हूँ।

हनुमानजी द्वारा वैशल्याकुमारी वहांपर लाई गई और उसके पुण्य प्रभावसे शक्ति भाग गई और लक्ष्मण जी सचेष्ट हो गए।

द्वितीय दिवस पुनः युद्ध हुआ। आज के युद्ध में रावण की सेना रामचन्द्रजी के सामन्तों द्वारा प्रति समय पीछे हटने लगी। अस्तु, स्वयं रावण ही रामचन्द्र जी से युद्ध करने के लिए तैयार हुआ। वीर लक्ष्मण रावण से युद्ध करने के लिए उत्सुक हो रहे थे। अस्तु, वे उस से युद्ध करने लगे। रावण ने अनेक दिव्य शस्त्रों का लक्ष्मणजी पर आघात किया, किन्तु लक्ष्मणजी ने अपनी युद्ध कला से सब को निष्फल कर दिया। अन्त में क्रोधित होकर रावण ने महान शस्त्र चक्र का आघात किया, किन्तु चक्र भी लक्ष्मण जी की कोई हानि नहीं कर सका और उल्टा यह वीर

लक्ष्मण के हाथों में आकर स्थिर होगया। उन्होंने उसी चक्र-रत्न द्वारा रावण का वध किया।

रावण का पतन होते ही उसकी समग्र सेनामें अत्यन्त भयका संचालन हुआ सैनिकगण निराश्रय होकर इधर उधर भागने की चेष्टा करने लगे, किन्तु रामचंद्रजीने उन्हें आश्वासन देकर उनका भय दूर किया और अपने शरणमें लेकर शरणवत्सलताका परिचय दिया।

रामचंद्रजीने अपना विशाल सैन्य और विभीषण, हनूमान सुग्रीवादि बड़े २ राजाओं और सामन्तों सहित लंकामें प्रवेश किया और शोक संतापित वियोगिनी सीताको दर्शन देकर संतोषित किया। अनेक वर्षों के वियोग से दुःखित सीताने भी पतिके पुनः दर्शन कर अपनेको कृतार्थ समझा। रामचंद्रजी भी सीता को प्राप्त कर पुनः सुखके सागर में निमग्न होगए, विभीषण तथा लंका निवासियों के विशेष आग्रह से उन्होंने कुछ समय तक सुखपूर्वक वहाँ पर निवास किया।

बारह वर्ष व्यतीत होगए। महाराजा भरत तथा कौशल्यादि माताओंके लिए रामचंद्र जी का विरह असहनीय हो उठा। अस्तु, उन्होंने कार्यकुशल नारदजी को रामचंद्रजी के बुलाने के लिए भेजा।

भाई भरतकी विनय, माताका प्रेम, और प्रजाकी पुकार

महलमें रख लिया। महाराजा का यह अन्याय है यह प्रजा के लिए अत्यन्त अहितकर है" यह आवाज़ कुछ प्रजाके मुख्य व्यक्तियों द्वारा रामचन्द्रजी के कानमें पड़ने लगी। अग्नि सुलग गई. उसने रौद्र रूप धारण किया, महाराजा का हृदय लोक लज्जासे दहल उठा, उन्होंने प्राण-प्यारी सीताजी के दृढ़ स्नेह को लोक-लज्जाके मारे तुच्छ समझा और निर्दय हृदय होकर उनके निर्वासन का संकल्प किया। पतिव्रता सीता, रामचन्द्रजी के द्वारा घोर विपदमें निर्वासित की गई किंतु अंतमें सतीत्वकी विजय हुई, सीताजी ने अपने पातिव्रत की परीक्षा देकर संसार में महिलाओं के महत्व को बढ़ा दिया, पातिव्रत रत्नको परीक्षा की शाण पर रखकर चमका दिया।

महाराजा रामचंद्र और श्री लक्ष्मणजी में अद्भुत भ्रातृ स्नेह था. उनके हृदयमें स्वाभाविक प्रेमका अटूट झरना बहता था. उन्हें परस्पर का थोड़ासा वियोग भी असह्य हो उठता था।

एक समय देवसभा में एक देवको श्री रामचंद्रजी और लक्ष्मणजीके अपूर्व भ्रातृस्नेहको श्रवणकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ, वह उनके प्रेमबंधनकी परीक्षाके लिए मध्यलोकमें आया और उसने प्रथम ही उद्यान में क्रीड़ा करते हुए लक्ष्मणजी के भ्रातृ स्नेहकी परीक्षा हेतु उनके समक्ष निम्नोक्त वचन कहे—

"हा! हमारे शोकका कुछ ठिकाना ही नहीं रहा। दैव! तूने यह क्या किया! ऐसे प्रतापी, त्यागी और धर्मनिष्ठ महा-

जगाने का प्रयत्न करने लगे, किन्तु उनकी यह सभी चेष्टाएँ निष्फल हुईं। रामचंद्रजी भ्रातृस्नेह से विक्षिप्त होगए। राज्य का समस्त कार्य उन्होंने त्याग दिया, वह भाई लक्ष्मण को कंधे पर लेकर उसकी मूर्छा दूर करने तथा उसे सचेष्ट करने के लिए अनेक उपचार करने लगे। उनके सुहृदयोंने तथा बुद्धिमान् मंत्रियोंने उन्हें अनेक शुभ वचनों द्वारा संबोधित किया, किन्तु मोह के दृढ़ आवरण के कारण उनका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा।

इस प्रकार छः मास तक रामचंद्रजी मोहके बंधनमें पड़े हुए मृतक लक्ष्मणजीके शरीरको गोदमें लिए हुए उसे सचेष्ट करने के उद्योग में लगे रहे, किंतु अंतमें उन्हें स्वयं ही प्रबोध हुआ और उन्हें अपनी इस पूर्व अज्ञान अवस्था और मोह-मग्नता पर बड़ा पश्चात्ताप हुआ और उन्होंने योग्य रीति से भाई लक्ष्मण की क्रिया की।

संसार नाटकके अनेक दृश्यों को देखते २ श्री रामचंद्र जी का हृदय ऊब गया था, राज्य कार्यों तथा महलों के निवास से उनका मन अब किंचित् प्रसन्न नहीं होता था।

उनकी निर्मल आत्मा पर से मोहका आवरण हट चुका था। अस्तु, उन्हें अब महलों का रहना तथा राज्य का कार्य भार सा प्रतीत होने लगा। अब उन की इच्छा आत्मोद्धार करने के लिए दृढ़ होगई थी। नश्वर विषयभोगों तथा सांसारिक प्रलोभनों से उन्हें घृणा हो गई। अतः वे अपने प्रतापी पुत्रों को राज्य का कार्य सौंप कर अनेक राजाओं सहित उग्र व्रतों की दीक्षा लेकर घोर तपश्चरण करने लगे! जिस प्रकार स्वर्ण अग्नि में पड़ने से मैल रहित होकर चमकने लगता है, उसी प्रकार महात्मा रामचंद्रजी का शरीर तपके दिव्य तेजसे

महर्षि गौतम

(१)

भारतवर्ष के समस्त प्रदेशों की सुन्दरता को अपनी मनोमोहकता द्वारा लज्जित करने वाले मगध देश अन्तर्गत अत्यन्त प्रसिद्ध और मनोहर ब्राह्मण नामक रमणीक नगर उक्त प्रदेश की महत्ता को प्रकट करता हुआ शोभायमान होता था। वेद पाठियों की उच्च ललित ध्वनि से वह सदैव पूरित रहता था। ब्राह्मणोचित कर्मों में निरत श्रुतविज्ञ शांडिल्य नामक विप्र महोदय सुलक्षणा स्थंडिला नामक धर्मपत्नी समेत उक्त नगर में सुख पूर्वक निवास करते थे। यत्र तत्र ग्राम निवासी ब्राह्मण समुदाय में उन का यथेच्छ आदर तथा सम्मान था। सत्कर्म निपुणा स्थंडिला की कुक्ष से उत्पन्न हुए गौतम, गार्ग्य और भार्गव नामक तीन पुत्र उन के उत्तम कुल को सुशोभित करते थे। उक्त पुत्रों के समूह से वेष्टित विप्रराज शांडिल्य गृहस्थ के उत्तम सुख का निरन्तर अनुभव करते रहते थे। यद्यपि उन के तीनों पुत्र ज्योतिषशास्त्र, वैद्यक, अलंकार, न्याय, काव्य, सामुद्रिक आदि सम-

कुबेर को भगवान का त्रैलोक्य मनोहारी समवशरण रचना करने की आज्ञा दी। कुबेर ने क्षण मात्र में मानवों के नेत्रों और हृदयों में आश्चर्य, हर्ष और आनन्द की सृष्टि करने वाले समवशरण का निर्माण किया। उस ने उस में सुन्दर बारह सभाएं निर्मापित कीं और मध्य में उज्वल रत्नसिंहासन निर्मित किया। रत्नसिंहासन पर आसीनस्थ भगवान की चतुर्मुख दिव्यमूर्ति मानवों के नेत्रों को हर्षित करने वाली विराजमान थी। मानव, पशु-पक्षी और देवताओं का समूह भगवान के चरणों में अपने मस्तक को झुकाकर अपने योग्य स्थान पर विराजित होने लगा। समस्त प्राणी भगवान का दिव्य उपदेश श्रवण करने को उत्सुक होगए। क्रमशः तीन घंटे व्यतीत होगए, किन्तु यह क्या? भगवान की दिव्य ध्वनि प्रकट नहीं हुई। इन्द्र के हृदय में अनेक आशंकाएं उदित होने लगीं। वह विचारने लगा कि यह क्या बात है जो भगवान की दिव्य ध्वनि प्रकट नहीं होती। इस प्रकार विचार करते हुए उसने शीघ्र ही अपने ज्ञान द्वारा भगवान की दिव्यध्वनि निरोध का कारण ज्ञात कर लिया। वह या समझ गया कि भगवान की दिव्यध्वनि का विवेचन करने वाला कोई भी गणधर इस स्थान पर उपस्थित नहीं है। यही कारण है कि भगवान की दिव्यध्वनि अभी तक प्रकट नहीं हुई। अब इसका क्या उपाय है? अच्छा एक उपाय है, औ

यह केवलमात्र यही उपाय है। हां तब उस परम विद्वान किन्तु अभिमानी गौतम ब्राह्मण को यहां लाना होगा—क्योंकि निश्चयतः भगवान् के समवशरण का वही प्रथम गणधर होगा। इन्द्र ने एक वृद्ध ब्राह्मण का वेष धारण किया और वह विद्वान् गौतम को लाने के लिए चल दिए।

(५)

शिष्य गणों के समूह से वेष्टित दीप्तिमान विशाल मुख मण्डल द्वारा अपनी प्रतिभा के प्रबल तेज को प्रकाशित करने वाले, पांडित्य का अतुलित अहंकार धारण किए, दीर्घ शिखाधारी गौतम अपनी व्याख्यान शाला में विराजमान थे। उनका हृदय अत्यन्त प्रसन्न और सुख मग्न था। अचानक उन्होंने अपनी शिष्यमण्डली की ओर गम्भीर दृष्टि से अवलोकन किया। समस्त शिष्यगण सरल और गम्भीर भाव धारण किए हुए गुरु राज के मुखारविन्द से निकलने वाले गम्भीरतम उपदेश श्रवण करने के लिए उत्सुक दिखाई पड़े। इसी समय एक जीर्ण शरीर धारी शिखा सूत्र से वेष्टित वृद्ध ब्राह्मण ने उस सभामें प्रवेश किया। वह व्याख्यान श्रवण करने की इच्छा से एक स्थान पर बैठ गया। कुछ समय पश्चात् शांति का निरोध करते हुए विप्रराज गौतम ने अपना पांडित्यपूर्ण व्याख्यान देना प्रारम्भ किया। उनका व्याख्यान अत्यन्त गंभीर एवं प्रतिभापूर्ण था। समस्त शिष्य गण मन्त्र मुग्ध की भांति

वृद्ध ने कहा—अच्छा तब आप मेरी प्रतिज्ञा श्रवण कीजिए। मेरी प्रतिज्ञा केवल यही है कि—"यदि आप मेरे प्रश्न का स्पष्ट उत्तर प्रदान कर मेरे हृदय की शङ्काएं नष्टकर देंगे तब मैं आपका शिष्य बनकर रहूँगा और यदि आप कदाचित् मेरे प्रश्न का समुचित उत्तर नहीं दे सके तब आप को अपने समस्त शिष्य समूह समेत मेरे गुरू का शिष्य बनना पड़ेगा"। बस मेरी यही प्रतिज्ञा है। कहिए आप इसे स्वीकार करते हैं ?

गौतम ने गर्व पूर्वक कहा—गौतम इस प्रतिज्ञा को सहर्ष स्वीकार करता है। आप अपना प्रश्न उपस्थित कीजिए।

वृद्ध ब्राह्मण ने उच्च स्वर से अपने प्रश्नस्वरूप निम्नोक्त काव्य को कहा—

त्रैकाल्यं द्रव्य षट्कं नव पद सहितं जीव षट् काय लेश्या।
पञ्चान्येऽचास्तिकाया व्रत समिति गति ज्ञान चारित्र भेदाः॥
इत्येतन मोक्ष मूलं त्रिभुवन महितैः प्रोक्तमर्हद्भिरीशैः।
प्रत्येति श्रद्दधाति सकल गुण गणै मोक्ष लक्ष्मी निवासः॥

काव्य समाप्त हुआ। वृद्ध ब्राह्मण ने नम्रता पूर्वक कहा कृपया इसके प्रभेदों को मुझे स्पष्टतया समझाने का प्रयत्न कीजिए। प्रश्न श्रवण कर विप्रराज गौतम का हृदय विक्षुब्ध होगया। शुष्क पात समूह तीव्र आँधी के वेग से जिस प्रकार नभ मण्डल में यत्र तत्र उछलने लगता है, समुद्र की तीव्र तरंगों में जहाज जिस प्रकार डगमगाने लगता है, उसी प्रकार

महाराज ! मेरे गुरु के समीप ही चलिए। दोनों ने महावीर के समवशरण की ओर प्रस्थान किया।

(६)

वृद्ध ब्राह्मण वेषधारी इन्द्र के साथ २ चलते हुए विप्रराज गौतम ने भगवान के समवशरण की महिमा को प्रदर्शित करने वाले दिग्गज मानियों के विस्तीर्ण अहंकार पर्वत को खंड २ कर देने वाले विशाल तथा उच्च मानस्तम्भ का विलोकन किया। उसे विलोकन करते ही उनका समस्त मिथ्या ज्ञान जनित मानमद विनष्ट हो गया। उन्होंने सरलता पूर्वक भगवान के दिव्य समवशरण के अन्तर्गत प्रवेश किया।

अपनी मुख प्रभा से संपूर्ण सूर्य मण्डल की कांति को लज्जित करने वाले, आकाश मंडल में दिव्य सिंहासन पर विराजमान, देवताओं तथा मानवों के नम्रीभूत हुए मुकुटों से सुशोभित भगवान महावीर के शांत सरल और विकार रहित मुख मंडल का विप्रराज गौतम ने निरीक्षण किया। उनकी उस अलौकिक प्रभापूर्ण मुद्रा का निरीक्षण कर गौतम का हृदय उनकी विनय और भक्ति से नम्रीभूत हो गया। उनका बड़े २ वादियों की ओर नम्र न होने वाला उन्नत मस्तक भगवान के चरण कमलों पर अनायास ही झुक गया। उनका मस्तक मद गलित हो गया।

उनका मिथ्या ज्ञान मद नष्ट होने के साथ ही उनके हृदय

में सद्विचार की तरंगें उमड़ने लगीं। वह विचार करने लगे— अहा ! जिन महात्मा का इतना प्रभाव है: जिनके समोशरण की इतनी महिमा है: समस्त देव, ऋषि तथा मानव समूह जिनके चरणों की सेवा में उपस्थित हैं, उन महात्मा महावीर से वाद विवाद करके मैं किस प्रकार विजय प्राप्त कर सक्ता हूँ ? इतना ही नहीं, किन्तु इनके सम्मुख मेरा वाद विवाद करना ही हास्यास्पद है। सूर्यमंडल के सम्मुख क्षुद्र पटबीजने की समता करना केवल अपनी मूर्खता का परिचय देना है। खेद है, कि मुझे अपने किंचित अक्षर ज्ञान का इतना बड़ा अभिमान था, किन्तु अब मेरा समस्त अभिमान नष्ट होगया। सच है जब तक कोई साधारण मानव किसी विशेष महत्व पूर्ण पदार्थ को नहीं देखता, तब तक उसे अपनी क्षुद्र वस्तु का ही बड़ा अभिमान रहता है। ऊँट जबतक उच्च पहाड़ की चोटी का निरीक्षण नहीं करता तब तक वह अपने को सारे संसार से विस्तीर्ण तथा उच्च मानता है। किन्तु पर्वत के समीप प्राप्त होते ही उसका सारा गर्व चूर्ण हो जाता है। मुझे ज्ञात हो गया कि वास्तव में सत्य ज्ञान से रहित मैं अपने को जो पूर्ण ज्ञानी समझता था वह मेरा समझना केवल कूप मंडूक सादृश था। आज इन महात्मा महावीर को देखकर मेरा सारा भ्रम नष्ट होगया। अब मेरा कर्तव्य है कि मैं इनके सामने व्यर्थ विवाद न करूं। क्योंकि यह निर्विवाद सिद्ध है

कि इस विवाद में मुझे हास्य तथा अपमान के अतिरिक्त कुछ भी प्राप्त नहीं होगा, एवं मेरा जो कुछ पूर्व गौरव बना हुआ है वह भी नष्ट हो जायगा तथा मैं इनके शिष्य उक्त ब्राह्मण के उत्तर देने में भी असमर्थ रहा था। अस्तु पूर्व प्रतिज्ञानुसार मुझे इनका शिष्य अवश्य होना चाहिए और ऐसे सर्वज्ञ महात्मा का शिष्य होना है भी मेरे लिए बड़े गौरव की बात। इस प्रकार उक्त विचार धाराओं के वेग को न सम्हाल सकने वाले उन महामना गौतम ने अपने समस्त शरीर को पृथ्वी पर्यंत झुकाकर भगवान महावीर को साष्टांग नमस्कार किया। उनके चारित्र मोहनीय कर्म का पर्दा शीघ्रतः नष्ट हो गया तथा सम्यग् ज्ञान के प्रकाश से उनका हृदय प्रकाशित हो गया। उन्होंने उसी समय भगवान की उच्च गद् गद् स्वर से स्तुति विनय तथा प्रशंसा करते हुए उनके शिष्य बनने की अभिलाषा प्रकट की और जैनेश्वरी दीक्षा की याचना की। भगवान महावीर ने उन्हें निकट मोक्षगामी जानकर उसी समय दीक्षा प्रदान की। उनके साथ २ गौतम के पुत्र बन्धु तथा समस्त शिष्यों ने भी जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण की। "जैनधर्म की जय" के नाद से आकाश मंडल गूँज उठा।

भगवान महावीर की परोपकारिणी वृत्ति, महा मिथ्यात्वी गौतम को अपने शरणागत ग्रहण करने की महत्ता और विश्व भर में कीर्ति का गान होने लगा।

ऋषिराज गौतम के इस समयोपयोगी सुकृत्य की समस्त उपस्थित हुए देव और विद्याधरों ने मुक्त कंठ से प्रशंसा की।

इन्द्रभूति गौतम ब्राह्मण एक क्षणमें भगवान् महावीर के समवशरण के प्रथम गणधर बनगए। भगवान् महावीर ने धर्म के सत्य रहस्य से विमुख हुए मिथ्याज्ञान से आक्रान्त महाज्ञानी गौतम को एक क्षणमें मोक्ष लक्ष्मी का पात्र बना दिया। धन्य भगवान् महावीर आपकी सार्व प्रेम मयी दृष्टि और धन्य महात्मा गौतम आपका सौभाग्य !

समस्त पाखण्डों का ध्वंस करने वाली, मिथ्या वादियों का मद विमर्दन करने वाली और यथार्थ धर्म का रहस्य प्रकट करने वाली भगवान महावीर की दिव्यध्वनि प्राणीमात्र के कानों में पहुंचकर अमृतरस की वर्षा करने लगी। उनकी दिव्यध्वनि द्वारा क्रमशः सात तत्त्व, पंचास्तिकाय, तीन काल, नव पदार्थ, छह काय के जीव, छह लेश्या, मुनियों के पंच महाव्रत, पंच समिति, तीन गुप्ति और गृहस्थों के बारह व्रतों का विशद विवेचन किया जाने लगा। मानवों के हृदयों की समस्त आशंकाएं तथा समस्त मिथ्या भ्रम विनष्ट होने लगे।

"जयतीति जैन शासनम्" की पताका अखिल विश्व के प्रत्येक उच्चाकाश में फहराने लगी। बड़े २ वादी प्रतिवादी अपना समस्त मिथ्या मद त्याग भगवान के शासन की शरण

में आग। कोरे क्रियाकांडों का भ्रमजाल अज्ञानता की आंधी और अत्याचार तथा अनाचारों का अकांड तांडव समाप्त हुआ। भगवान के उपदेश से समस्त प्राणी सुख और शांति अमृत का पान करने लगे।

महात्मा गौतम ने भगवान के महान् उपदेशों का सभी प्रकार विवेचन किया—मानवों की समस्त आशंकाओं का शांति पूर्वक भगवान की वाणी अनुसार निराकरण किया और समस्त श्रुतज्ञान का ग्यारह अङ्ग तथा चौदह पूर्वरूप सुन्दर रचना की।

(७)

कार्तिक कृष्णपक्ष की अमावस्या की रजनी के नष्ट प्रायः अन्धकार के अवसान का संदेशा सुनाने वाली प्रभातकाल की शीतल मृदुगति पवन विचरण करने लगी थी। तारागण अपने क्षीण प्रकाश से चमचमकर रात्रि के विस्तीर्ण साम्राज्य के नष्ट होने की घोषणा करने लगे थे।

प्रभात होने में अब कुछ ही समय शेष था। ठीक इसी समय [illegible] स्वर्ग के अधीश्वर इन्द्रका सिंहासन कंपित होने लगा। इस अवसर में प्रत्येक सिंहासन का इस प्रकार कंपित होने [illegible] इन्द्रगण [illegible] बड़े आश्चर्य में पड़ गए, [illegible] अपनी तीक्ष्ण [illegible] बुद्धिपर जोर [illegible] [illegible] [illegible] समस्त वृत्तान्त ज्ञात होगया। "अहो"

आज भगवान् महावीर के निर्वाण का समय उपस्थित होगया है। आज इसी समय—रजनी के इसी क्षीणप्रकाशमें—भगवान महावीर की दिव्य आत्मा इस मध्यलोक की स्थिति को त्याग कर लोक के उच्चतम भागमें प्रवृष्ट करेगा। अहा! आज मोक्ष नगरी की अधिष्ठात्री शिवसुन्दरी के परम सौभाग्य का दिवस है जो वह अपने उपासनीय देवता भगवान् महावीर को अपने मोक्ष साम्राज्य का स्वामी बनाकर अपने हृदय को संतोषित करेगी। हां! आजही वह भगवान् चार अघातिया कर्मों की क्षीण जीवनी को नष्टकर अनंत सुखमय अष्ट गुण रत्नों से विभूषित होंगे।"

यह विचार करने के पश्चात् उसने समस्त देवताओं के समूह संयुत शीघ्र ही पावापुर के सुरम्य स्थान में भगवान के चरण कमलों पर अपना मस्तक झुकाया—उसने ललित स्वरों में भगवान् की स्तुति व यशकीर्तन किया—विनयकी, पूजा की। उसका हृदय भक्ति से परिपूर्ण होगया। इसी समय अग्नि कुमार जातिके देवेन्द्र ने अपना स्वर्ण प्रभापूर्ण मस्तक भगवान के सम्मुख नम्रीभूत किया उसके कांतिपूर्ण मुकुट से दीप्तिमान प्रभाप्रकाशित होने लगी और उस प्रचण्ड प्रभाके द्वारा भगवान का पर मौदारिक शरीर भस्मीभूत होगया। उनका आत्मा कर्मों से रहित होकर लोक के अन्तिम भाग में निश्चल और अचल रूपसे स्थित होगया

इन्द्रसहित समस्त देवताओं ने भगवान् के शरीर की रजको अपने मस्तक पर धारण किया। उनका उत्तमरीति से सत्कार किया, पूजा की और इस प्रकार भगवान् का निर्वाण कल्याणक मनाकर उन्होंने स्वर्ग को प्रयाण किया।

संध्या समय हुआ, गणराज गौतम अपने आत्मध्यान में निमग्न थे। उन्होंने अपने आत्मा को आत्म स्वरूप में तन्मय कर दिया था। उन्होंने पूर्ण आत्मशक्ति के प्रकाश का अवरोध करने वाले संसारी मानवों के चिरशत्रु आत्म गुणघातक घातिया कर्मों के ध्वंस करने का अनुष्ठान किया और तत्काल ही शुक्ल ध्यान का तीव्र प्रकाश प्रकाशित किया। घातिया कर्म का अन्धकार उस दिव्य प्रकाश के सम्मुख विलय होने लगा और शीघ्रही उन्होंने अनन्त केवलज्ञान लक्ष्मी को प्राप्त कर लिया। देवताओं ने पुनः उपस्थित होकर दिव्यरत्नों के प्रकाश से पृथ्वी को प्रकाशित कर गणराज गौतम की केवलज्ञान लक्ष्मी का महा महोत्सव मनाया। उनकी स्तुति की और केवलज्ञान लक्ष्मीका पूजन तथा अनुमोदन किया।

कार्तिक कृष्णामावस्या तिथि तू धन्य है! तूने समस्त पर्वों में सर्व श्रेष्ठ गौरव प्राप्त किया है। तूने भगवान् महावीर स्वामी के जीवनमें चिर स्मरणीय निर्वाणगौरवको प्राप्त किया और अन्तिम समय में गणराज गौतम को दिव्य केवलज्ञान प्राप्त करके उस प्रकाश से संसार को प्रकाशमान किया

केवलज्ञान के पश्चात् गणराज गौतम ने भगवान महावीर के धर्म शासन का पूर्ण प्रचार किया। उन्होंने उनके आदर्शों को अखिल विश्वमें विस्तरित किया।

वह केवलज्ञान प्रभासे विभूषित गणराज गौतम हमारे हृदयों में सम्यग्ज्ञान का उज्वल प्रकाश विकसित करें, हमें सुबुद्धि प्रदान करें।

भगवान नेमिनाथ

(१)

विशाल भरत क्षेत्र की शोभावर्द्धक, सुप्रसिद्ध मथुरा नगरी के महाराजा उग्रसेन श्रेष्ठ शासक थे। वह न्याय तथा नीति संयुक्त अपनी प्रजा का संरक्षण करते थे। उनके राज्य कार्य से उनकी समस्त प्रजा अत्यन्त सुखी और सन्तुष्ट थी।

महिलाओं में श्रेष्ठ गुणशीला धारिणी महाराजा उग्रसेन के हृदय क्षेत्र में आनन्द वर्द्धन करने वाली उनकी सर्वश्रेष्ठ महारानी थी। युगल दंपति पूर्व कृत शुभ कृत्यों का उपभोग करते हुए अपने धर्म मय जीवन को व्यतीत करते थे।

एक समय रात्रि के अन्तिम प्रहर में महारानी धारिणी सुख निद्रा में निमग्न थी। इसी समय उसने हृदय को आनन्द देने वाले शुभ स्वप्नों का निरीक्षण किया। इसी रात्रि को अपराजित नामक स्वर्ग विमान वासी देव अपनी आयु समाप्त कर महारानी के पवित्र गर्भ में स्थित हुआ।

नव मास व्यतीत होने पर शुभ समय में महारान

धारिणी के उदर रत्न कोष में अनिन्द्य सुन्दरी कन्यारत्न का जन्म हुआ।

महाराजा उग्रसेन ने कन्या जन्म का बड़ा आनन्द महोत्सव किया और उस सौभाग्यशालिनी कन्या का राजीमती नामकरण किया।

शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की सदृश अपनी सौंदर्य कांति को वर्द्धन करती हुई कुमारी राजीमती क्रमशः आयु वृद्धिगत होने लगी। योग्य वय संपन्न होने पर महाराजा उग्रसेन ने समस्त उत्तम विद्याओं में निपुण गुरुवर्य विद्यासागर के समीप उसे विद्याध्ययनार्थ उपस्थित किया।

राजीमती की बुद्धि अत्यन्त कुशाग्र और गम्भीर थी। अस्तु अपनी विलक्षण प्रतिभा के बल पर उसने अल्प समय में ही समस्त व्यावहारिक एवं धार्मिक विषयों सम्बन्धी ग्रंथों का सम्यग् प्रकार से अध्ययन कर लिया। इस प्रकार उसका हृदय अल्प अवस्था में ही अभिज्ञान का भण्डार बन गया।

वह सुन्दरी अत्यन्त स्वरूपवान एवं प्रभा युक्त तो थी ही, किन्तु उसने अपनी समस्त चमत्कृत विद्याओं तथा गुणों के बल से "सोने में सुगन्धि" की कहावत को चरितार्थ कर दिया था।

उस महामान्या ने अपनी रूप लावण्यता और गुणज्ञता की चमत्कृत प्रभा के सम्मुख पृथ्वी मण्डल की समस्त

राजकन्याओं के महत्व को नष्ट कर दिया था। उस समय उसके रूप और गुणों की समता करने वाली भाग्यवान् कन्या भारतवर्ष में अन्य कोई नहीं प्रतीत होती थी। क्रमशः उसने यौवन के रमणीय क्षेत्र में प्रवेश किया। उसके संपूर्ण सुडौल अङ्गों में अद्वितीय सुन्दरता विकसित होने लगी। उसे यौवन पूर्ण अवलोकन कर महाराजा उग्रसेन को उस के अनुरूप ही गुण संपन्न राजकुमार प्राप्त करने की चिन्ता उपस्थित हुई।

उन का विचार था, कि गृहस्थ जीवन वर-कन्या के समान गुण, रूप, विचार और वय की अनुकूलता के ऊपर ही अवलम्बित रहता है। यदि इन में से दोनों में किसी एक बात की न्यूनाधिकता हुई अथवा विचारों में वैषम्यता हुई तो वह गृहस्थ जीवन मानव कर्तव्य का साधक न बन कर प्रेम का स्थान और धर्म के उद्धार का सहायक न बन कर कलह, द्वेष और कुरुचि का स्थान बन जाता है।

वास्तव में वर्तमान समय की प्रकृति का अवलोकन कर यह विचार हृदय में उदित होता है कि वर्तमान कालीन दुरवस्थाओं का कारण केवल मात्र वय, गुण तथा विचारों के प्रतिकूल वर कन्याओं का अनमेल सम्बन्ध ही है जिस के कारण दम्पति समान विचार वाले न होने के कारण निरन्तर कलह और द्वेष में संलग्न बने रहते हैं। उनके जीवन कर्तव्य शून्य चिन्ता और सौन्दर्यविहीन हो जाते हैं। इस सम्बन्ध

में माता पिताओं की अदूरदर्शिता, स्वार्थपरता और अज्ञानता तथा वर कन्याओं की परवशता, हृदय दौर्बल्यता और कर्त्तव्य विहीना असद् बुद्धि ही अधिकांश में कारण भूत है। वर्तमान के कुत्सित सम्मान और अर्थ लोलुपी माता पिताओं की केवल मात्र अतुल ऐश्वर्य, धन संपति और कोरे सम्मान की ओर ही सदैव दृष्टि रहती है। वह प्रत्येक अवस्था में अपना सम्बन्ध धनिक व्यक्तियों से चाहे वह कितने ही दुर्व्यसनी हों, धर्म शून्य हों, अत्याचारी हों, वर चाहे योग्य वय न हो, वृद्ध हो, रोगी हो, विरुद्ध विचारावलम्बी हो, किन्तु प्रत्येक अवस्था में उन्हीं से सम्बन्ध करने की रुचि रहती है। इस के अतिरिक्त गुणवान, धर्मवान तथा समान विचार वाले गृहस्थों की ओर तो वह दृष्टिपात ही नहीं करते और बेचारी कन्या तथा ज्ञान शून्य युवक अपने भविष्य के सम्बन्ध में कुछ भी विचार न रखते हुए समाज के नष्टकारी बन्धन में बद्ध हुए मौन हुए अपने अनमेल सम्बन्ध रूपी राक्षस के सम्मुख अपने को समर्पण करते हुए अपने भावी जीवन की विकसित कलिकाओं को कुचल डालते हैं। यही कारण है कि वर कन्याओं का योग्य सम्बन्ध न होने से वह परस्पर प्रेम बन्धन में बद्ध न होकर गृहस्थ जीवन के बोझ सह सकने में असमर्थ होते हैं और देश तथा समाज की आशा मूर्तियां युवक और युवतियाँ अपने जीवन से

अवलोकन किया। उन स्वप्नों के अवलोकन से महान अचरज को प्राप्त हुई देवी निद्रा रहित हुई और रात्रि के समय में निरीक्षण किए हुए स्वप्नों के संबंध में विचार करने लगी।

प्रातःकाल का समय हुआ। प्रतापी मार्तंड ने अपनी संपूर्ण स्वर्ण किरणों के द्वारा निशाकालीन घोर अन्धकार को विनष्ट कर जगत को प्रभा पूर्ण बना दिया। पक्षीगण मधुर कलरव से मानवों का मनोमोहन करने लगे। राजमहल में प्रातः कालीन सुन्दर बाजित्रों का नाद होने लगा। महारानी अलसभाव संयुक्त अपनी सुकोमल शैय्या से उठी। देवस्मरण तथा प्रातः कालीन कृत्यों से निवृत होकर वह प्रसन्नता पूर्वक महाराजा के समीप उपस्थित हुई।

रत्नजड़ित सिंहासन पर आसीन महाराजा उग्रसेन ने देवी को आते हुए निरीक्षण कर उसे आदर पूर्वक अपने अर्द्ध सिंहासन पर स्थान दिया। महारानी ने मधु की मधुरता को लज्जित करने वाले मधुर शब्दों द्वारा रात्रि समय में अवलोकन किये समस्त स्वप्नों के रहस्य को महाराजा के सम्मुख विदित किया।

महारानी द्वारा स्वप्नों के सम्बन्ध में श्रवण कर कुछ समय को मौन हुए महाराजा उग्रसेन ने उन्हें निम्न प्रकार संबोधन करते हुए कहा—"प्रिये! तू अत्यन्त सौभाग्यशालिनी है। तेरे गर्भ में भारतवर्ष में सत्य धर्म का अद्वितीय संदेश

बालक नेमिनाथ का शुभ जन्म हुआ। द्वारावती नगरी के मानवों के हर्ष का ठिकाना नहीं रहा। संसार के समस्त प्राणियों के हृदय सुख शांति से परिपूर्ण होगए। मङ्गलनाद से महाराजा का आंगन व्याप्त हो गया। देवताओं संयुक्त इन्द्र ने उपस्थित होकर तांडव नृत्य समेत भगवान् का जन्मोत्सव मङ्गल मनाया। मति, श्रुत और अवधिज्ञान संयुक्त बालक नेमिनाथ क्रमशः बालचन्द्र की सदृश वृद्धि पाने लगे।

(२)

प्रातःकाल का समय था। सुन्दरी प्रकृति देवी के विस्तीर्ण आंगण में अनेक मनोमोहक दृश्य चित्रित हो रहे थे। भास्कर ने अपनी स्वर्ण किरणों से प्रकृति की शोभा को द्विगुणित कर दिया था। ऐसे रम्य समय में कुमार नेमिनाथ अपने अनेक बाल्य सखाओं के सहित विनोद करते हुए यत्र तत्र भ्रमण करते हुए महाराजा श्रीकृष्ण की आयुधशाला के समीप उपस्थित हुए। श्रीकृष्णजी की वह आयुधशाला विविध प्रकार के मनोहर और तीक्ष्ण अस्त्र शस्त्रों से अतिशय परिपूर्ण थी। कुमार नेमिनाथ विनोद पूर्वक उक्त आयुधशाला के द्वार पर उपस्थित हुए और उन्होंने आयुधशाला की विचित्रता निरीक्षण करने के लिए अपने साथियों समेत उस के अन्तर्गत प्रवेश किया। वहां के अनेक आश्चर्यकारी अस्त्र शस्त्रों का अवलोकन करने के अभिप्राय से वह उन्हें हाथ में

उक्त अधिकारी के मुंह से कुमार नेमिनाथ की इस प्रकार अद्वितीय शक्ति और वीरत्व को श्रवण कर श्रीकृष्ण जी विचार सागर में निमग्न हो गए। वह कहने लगे—"ओह! कुमार नेमिनाथ बड़े शक्तिशाली प्रतीत होते हैं। उन में जब इतनी सामर्थ्य है तब क्या यह सम्भव नहीं है, कि यह एक दिन इस मेरे राज्य का भी अपहरण कर लें? "वीर भोग्या वसुन्धरा" की उक्ति के अनुसार तो मुझसे यदि इनकी शक्ति की परीक्षा नहीं ली गई तो यह अवश्य ही मुझसे मेरे राज्य पर अधिकार कर लेंगे।

वह इस प्रकार विचार कर ही रहे थे, कि इसी समय अपनी सखा मण्डली सहित श्री नेमिकुमार उन्हें सामने आते दिखाई दिये। उन्हें देखकर वह अपने हृदय के भाव तथा पूर्व मनोगत भावों को हृदय में ही गुप्त रखते हुए तथा उनकी ओर प्रसन्नतापूर्वक निरीक्षण करते हुए उन्होंने नम्रता सहित निम्न प्रकार कहा—"कुमार! आप बड़े शक्तिशाली हैं। आपकी इस प्रकार की शक्ति और पराक्रम का मुझे अत्यन्त गौरव तथा अभिमान है। मैं आज आपकी शक्ति की महिमा इस समस्त राज्य कर्मचारी तथा प्रजा के सम्मुख प्रगट करना चाहता हूँ। अस्तु आप अपनी शक्ति परीक्षार्थ कटिबद्ध रहिए।" श्रीकृष्ण जी के मनोगत भावों को समझते हुए कुमार नेमिनाथ जी ने निम्न प्रकार कहा—"भाई! आप मेरी शक्ति की परीक्षा करें

अपनी समस्त शक्ति लगा देने पर भी वह उनकी अंगुली को झुकाना तो क्या टस से मस नहीं कर सके। इतना ही नहीं वह उनकी उस अंगुली झुकाने के लिए अपना बल प्रयोग करते हुए जिस प्रकार बन्दर वृक्ष की डाली पर झुकने लगता है उसी प्रकार झुकने लगे"। दर्शकगणों के आश्चर्य का कोई ठिकाना नहीं रहा। वह दाँतों मे अंगुली देकर इस अपूर्व दृश्य का अवलोकन करने लगे। आह ! इतनी शक्ति, इतना पराक्रम ! क्या वास्तव में यह जागृति है अथवा स्वप्न ! इतने बलकी, इतनी शक्ति की कुमार के इस सुकोमल शरीर में क्या कल्पना की जासकती थी ? वास्तव में इस अखिल विश्वमें यह महा शक्तिशाली कुमार नेमिनाथ अद्वितीय है।

इस दृश्य से श्रीकृष्ण जी के हृदय को बड़ा आघात पहुंचा। क्षणमात्र में उनका चमकता हुआ चेहरा पीला पड़ गया। उनका समस्त गर्व नष्ट होगया। कुमार नेमिनाथजी की शक्ति के सामने वह अपनी शक्ति की कुछ भी गणना नहीं समझने लगे और अत्यन्त उद्विग्नता पूर्ण खिन्नभाव से उनके मनमें निम्न प्रश्न होने लगा और वह बोल उठे "ऐसा है तब तो मेरी राज्यसत्ता अवश्य नष्ट होगी" उनके समीप खड़े हुए बलभद्र के कानों में श्री कृष्ण के इस करुण वाक्य ने प्रवेश किया। वह श्रीकृष्ण जी को धैर्य देते हुए बोले "भाई कृष्ण ! तुम किसी प्रकार का चिन्ता मत करो नेमिकुमार के हृदय में राज्य का

किंचित् लोभ नहीं है।" बलभद्रजी के यह शब्द समाप्त ही होने पाए थे, कि इसी समय आकाश से निम्न प्रकार देवध्वनि हुई "हे कृष्ण जी! आप नेमिकुमार जी से किसी प्रकार का भय मत कीजिए; यह तुम्हारा राज्य नहीं चाहते हैं" इन वचनों से श्रीकृष्ण जी के हृदय में कुछ संतोष हुआ और वह निश्चिन्त होकर कुमार नेमिनाथ जी के प्रति अपना पूर्ववत प्रेम भाव प्रदर्शित करने लगे। सभा विसर्जन हुई। श्रीकृष्ण जी अपने राज्यमहल में उपस्थित हुए, किन्तु उनके हृदय से उक्त आशङ्का बिलकुल निर्मूल नहीं हुई थी। वह किसी प्रकार भी कुमार नेमीनाथजी को शक्ति हीन करने का उपाय सोचने लगे।

(४)

प्रत्येक माता को अपने पुत्र स्नेह के प्रतिफल स्वरूप यदि कोई भावना होती है, यदि कोई इच्छा होती है, तो वह है केवल मात्र पुत्र का विवाह सुख। वह अपनी नवीन पुत्र वधू का निरीक्षण कर आनंद में तन्मय हो जाती है। वह अपने पुत्र जन्म के सौभाग्य को सफल समझ लेती है।

कुमार नेमिनाथ अब पूर्ण यौवन संपन्न होगए थे, उनका संगठित शरीर यौवनावस्था के प्राप्त होते ही अत्यंत परिपुष्ट और दर्शनीय होगया था। यद्यपि काम विकार रहित उनके शिशु अन्तःकरण में कोई भी सांसारिक वासना ने प्रवेश नहीं किया था, उनका हृदय शुद्ध निष्कलङ्क और विषय वासना से

उच कर देते हैं, वही धीर योद्धा, वही विक्रमशाली सैनिक, वनिता कटाक्ष के सम्मुख अपने को स्थिर नहीं रख सकते,एक क्षण में विजित हो जाते हैं—परास्त होजाते हैं। कुमार नेमिनाथ को अपनी अद्भुत शक्ति का बड़ा अहंकार है उनके इस गर्व का दमन करना मेरा अत्यन्त आवश्यक कर्तव्य है। तब उनकी महान शक्ति का विच्छेद करने वाली वनिता शक्ति को इनके सम्मुख उपस्थित कर इन्हें किसी प्रकार कामदेव के विशाल गढ़ में बद्ध करूं तब ही मैं निष्कटक रूप से अपना राज्य कर सकूंगा। हां! तब यह अवसर भी मेरे लिये नितान्त अनुकूल है," इस प्रकार विचार करते हुए उन्होंने अपनी रति सादृशी स्वरूपवती, हास्य और विनोद में सिद्ध हस्त पटरानियों से कुमार नेमिनाथ के हृदय में विवाह सम्बन्धी राग भाव उत्पन्न करने के लिये आदेश किया।

यह सुन्दरी रमणिएं श्री कृष्ण जी की आज्ञानुसार कुमार नेमिनाथ को सरलभाव से अपने सुन्दर बगीचे के अन्तर्गत मनोहर तड़ाग पर ले गईं तथा उनके साथ जल क्रीड़ा करने लगीं। उन काम विकार शून्य कुमार के साथ विविध प्रकार जल क्रीड़ा करती हुईं अपने कार्य सिद्धि का ध्यान रखती हुई वह वनिताएं क्रमशः अनेक प्रकार हास्य विनोद पूर्ण वार्तालाप करने लगीं। उनमें से एक विनोदशीला रमणी कुमार नेमिनाथ की ओर हास्य पूर्ण नेत्रों से विलोकन करती

मधु मिश्रित स्वर में बोली। देवर जी! आप अपना
ब्याह क्यों नहीं कराते हैं? क्या आप को विधुर रहना ही
पसन्द है? किन्तु आप यह स्मरण रखिये कि विधुर के
लिए कोई विवाहार्थ सम्बन्धी नहीं आते हैं तथा उन्हें फिर
कोई अपनी कन्या भी नहीं प्रदान करते। तथा गृहिणी रूपी
दीपक के बिना आप का घर प्रकाशपूर्ण कैसे होगा और तब
बहुत समय तक के लिये घर का नाम भी कैसे चल सकेगा।

इसी समय हास्य की प्रतिबिम्ब स्वरूपी द्वितीय रमणी
बोली—"आप के भाई बत्तीस हज़ार वनिताओं को संतोषित
करते हैं उनका पूरा पाड़ते हैं तब क्या आप एक को भी
सम्बोधित कर उस का पूरा नहीं पाड़ सकेंगे" तब तृतीया
रमणी ने मधुर स्वर से कहा "बहिन पूरा पाड़ना कोई सरल
बात तो नहीं है, उतनी पहुंच भी तो होना चाहिए"।

इतने में सरल कटाक्ष पात करती हुई चौथी महिला
ने हँसते २ कहा "यदि ऐसा है तो हम सभी बत्तीस हज़ार
का उपभोग करने वाले आप के बड़े भाई ही सर्व प्रकार से
पूरा पाड़ने की ज़िम्मेदारी लेने के लिए तैयार हो जाएँगे"।

इसी समय पांचवी विनोदपूर्ण मुस्कराती हुई बोली—
"बहिन यह तो सब ठीक है किन्तु इसके लिए शारीरिक शक्ति
भी तो होनी चाहिए। नहीं तो विवाह करने के लिए कौन
अस्वीकार करता है। प्रथम सभी तीर्थंकरों ने विवाह कर

का संयोग भी मानवों के हृदयों को अत्यन्त वेदना पहुँचाता है। इसी समय एक सुन्दरी ने कहा "प्यारी सखी राजीमती यदि तू मुझे कुछ पारितोषिक प्रदान करे तो मैं तेरे जीवन सर्वस्व कुमार नेमिनाथ का तुझे दर्शन कराऊं। प्यारी सखी! देख नेमिनाथ स्वामी कैसे हैं। मानो नागकुमार, कामदेव तथा इन्द्र की मूर्ति की पुण्यराशि हो हैं उनकी अकृत्रिम सुन्दरता का मैं शब्दों द्वारा कैसे वर्णन करूँ। यह निरुपम सौभाग्य-निधान कांतिवान और अनंत सौन्दर्य राशिसे विभूषित तेरा सौभाग्य धन्य है जो तू ऐसे उत्कृष्ट वरकी वधू बनेगी"।

उपरोक्त प्रकार विनोदों से हृदय प्रफुल्लित करती हुई सखी मंडल में आनन्द निमग्न हुई राजीमती उस समय अनेक उज्वल विचारों में तन्मय थी।

इसी समय राज्यद्वार की शोभा निरीक्षण करते रथ पर आरूढ़ हुए नेमिनाथ कुमार के कर्णों में अनायास ही पशुओं की करुणा से आर्द्र हुई चित्कार ने प्रवेश किया। उक्त करुणापूर्ण दयाजनक पशुओं की विलाप भरी आवाज़ को श्रवण कर वह अचानक चौंक पड़े। उन्होंने उत्कंठा पूर्वक अपने सारथीसे पूछा—सारथी! यह हृदय वेधक करुण क्रन्दन क्यों हो रहा है? सारथी ने नम्रता पूर्वक कहा—कुमार! आपके विवाहोत्सव पर अनेक देश विदेशों के राजा, महाराजा उपस्थित हुए हैं। उनमें कुछ म्लेच्छ नरेशों के सम्मानार्थ इन

मूक पशुओं को एकत्रित किया गया है तथा आज इनका वध किया जायगा। अस्तु अपने मरण समय को उपस्थित हुआ ज्ञात कर यह समस्त निर्बल जन्तु आपको अपने समीप आया जान कर करुणा पूर्ण स्वर से अपनी वेदना प्रकट करने के लिए आर्तनाद से पुकार कर रहे हैं। सारथी के इस प्रकार शब्दों को श्रवण कर कुमार नेमिनाथ का करुण हृदय दया से आर्द्र हो गया। एक क्षण प्रथम सांसारिक विषय प्रलोभनों के सुन्दर सदन में प्रवेश करने वाले नेमिकुमार का मोह-स्वप्न भंग हो गया। उनके हृदय में करुणा दया और वैराग्य की तीव्र तरंगे उमड़ने लगीं। और वह हृदयं-तर्गत करुणा के वेग को नहीं सम्हाल सके। वह उसमें डूब कर गोते खाने लगे।

वह विचारने लगे—"आह! एक प्राणी के सांसारिक विषय सम्बन्धी सुख साधन के लिए इतनी हिंसा। इतने मूक-निर्बल जंतुओं का प्राण घात। यह निर्दयता का अखंड तांडव—और वह भी मेरे लिए केवल मेरे अकेले के लिए—हां केवल मेरे ही सांसारिक सुख साधन के लिए। तब क्या मैं अपने स्वार्थ के लिए इतने मूक जनुओं का निर्दयता की वेदी पर बलिदान होने दूं? इस हृदय को हिला देने वाले हिंसा नृत्य को इस प्रकार कर्तव्य हीन बनकर खड़ा २ अपने नेत्रों से देखते हूँ। आह! क्या ऐसा दुष्कर कार्य मेरे द्वारा हो

सकता है ? नहीं ! कभी नहीं !! कदापि नहीं !!! मेरा मोह भंग होगया। सारथी ! मेरे रथको वापिस लौटादो—इसी समय लौटादो। मैं इस नारकीय दुष्कृत्य को एक क्षण मात्र भी खड़ा रहकर नहीं देख सकता। मैं अब अपना विवाह नहीं करूंगा। हां मैं कदापि यह विवाह नहीं करूंगा—मेरे विवाह के लिए इतनी घोर प्राणि-हिंसा ! इतने निर्बल प्राणियों का हत्याकांड ! नहीं, यह कदापि नहीं होगा। बधिक ! इन्हें शीघ्र बंधन विमुक्त करदो—क्यों नहीं करते हो ? अच्छा लो मैं अपने हाथों से इन्हें बंधन विमुक्त कर देता हूं। निर्बल जन्तुओ ! मुझे माफ़ करदो—हां मुझे क्षमा करदो। देखो ! मेरा इसमें कुछ भी अपराध नहीं है। मैंने अपने ज्ञानपने में अपनी प्रसन्नता में तुम्हारे हृदय दुखाने का कोई भी प्रयत्न नहीं किया। हां यह अवश्य है कि मेरे कारण ही तुम्हें इस प्रकार घोर वेदना सहन करनी पड़ी। अच्छा अब तुम बंधन विमुक्त हो। तुम स्वतंत्र हो। जाओ ! भागजाओ ! अपने उन तड़पते हुए भूखे बच्चों को व अपने स्नेहियों को जीवनदान दो। उनसे मिलकर उनके दुःखों का दूर करो। ओह ! इन सांसारिक विषय वासनाओं के लिए धिक्कार है जिसके लिए इस प्रकार घोर हिंसा का कारण बनना पड़ता है और इन अज्ञानी मानवों के लिए धिक्कार है जो इस प्रकार अपनी स्वार्थ साधना के लिए घोर पाप, घोर अनर्थ, घोर दुष्कृत्य करने से नहीं हिचकिचाते

और यह विषय सुख ! इन्द्रिय जनित पराधीन विषय सुख, अतृप्तिकर, क्षणमात्र में नष्ट होजाने वाले दुर्गति के दुःखों को प्राप्त कराने वाले—इन्हीं विषय सुखों के लिए न इतने दुष्कर्म किए जाते हैं !! मैं इन विषय सुखों का अवश्य त्याग करूँगा", यह कहते हुए उन्होंने अपने सारथी को रथ लौटाकर घर ले चलने की आज्ञा दी ।

(६)

सुन्दरी राजीमती सखियों के समूह में बैठी यह समस्त दृश्य अवलोकन करती हुई आनन्द सागर में निमग्न थी । उसी समय अनायास ही उसका बांया नेत्र फड़कने लगा । यह अशुभ सूचक कुशकुन को होते हुए देखकर उसका हृदय भावी विपत्ति की आशङ्का से व्याकुल होने लगा । वह अपने हृदय की व्याकुलता को नहीं रोक सकी । उसने धड़कते हुए हृदयसे अपनी सखियों से कहा—"प्यारी सखियों ! तुमतो मुझे महा भाग्यशाली समझ रही हो, किन्तु मेरे हृदय में बड़ी भारी विपत्तिकी आशंका होरही है। इस महा शुभकारी आनन्द महोत्सव के समय मेरे बांये नेत्र का फड़कना भविष्य में होने वाले महा अनर्थ की सूचना कर रहा है । मेरा हृदय भयकी आशङ्का से व्याकुल हो रहा है" राजीमती के इस प्रकार वचन श्रवण कर समस्त सखिएं कुमारी राजीमती को धैर्य बंधाती हुई बोलीं—कुमारी ! आप अपने हृदय में इस प्रकार आश-

को भी मैं अभी छुड़ाए देता हूँ। इस प्रकार कहते हुए उन्होंने राज्य सेवकों से पशुओं को छोड़ देने को कहा; किन्तु जब उन्होंने पशुओं को बंधन से नहीं छोड़ा तब स्वयं रथसे उतर कर उन्होंने समस्त पशुओं को बंधन से छुड़ा दिया और सारथी से अपने रथको वापिस लौटाने के लिए कहा।

इस प्रकार व्यवस्था श्रवण कर समस्त सखी गण तथा अन्य कुटुम्बी जन कुमार नेमिनाथ से रथ पुनः वापिस लौटाने के सम्बन्ध में अनेक हित कारक वचन कहने लगे। उसी समय माता शिवादेवी ने अपने पुत्र की ओर विशेष अनुराग दृष्टि से अवलोकन करते हुए कहा—जननी वत्सल पुत्र! तू यह क्या कर रहा है? विवाह सम्बन्ध में इस प्रकार विघ्न क्यों? देख, यह पृथ्वी मंडल के बड़े २ राजा महाराजा तेरे इस विवाह में सम्मिलित हुए हैं। तुम इस प्रकार क्रिया कर इन सब का मस्तक नीचा करने का प्रयत्न क्यों कर रहे हो? यदि तुम्हारे हृदय में पशुओं के प्रति दया भाव उत्पन्न हुई है, उनकी करुणावस्था विलोक कर उन्हें बंधन मुक्त कर दिया है तो यह बात दूसरी है। यह तेरा कार्य कुछ अनुचित नहीं है! किन्तु इस एक साधारण बात के कारण ही विवाह से इस प्रकार विमुख होना कहां की बुद्धिमानी है। प्रिय पुत्र! विवाह सम्बन्ध के लिए उपस्थित होकर इस प्रकार अनुचित विचार करना तेरे जैसे सुपुत्र के लिए उचित नहीं। आनंद

श्री नेमिकुमार जी को जब किसी प्रकार भी पाणि-ग्रहण के लिए वापिस लौटते हुए नहीं देखा तब श्री कृष्ण जी ने उनके हृदय में मोह उत्पन्न करने के लिए सुन्दरी राजीमती को उनके समस्त स्नेहपूर्ण भाव प्रदर्शित करने के भेजा। राजीमती उनके समीप उपस्थित होकर निम्न प्रकार रागोत्पादक वचन कहने लगी :—

"हे यादव भूषण ! क्या मुक्ति सुन्दरी से पाणिग्रहण करने के लिए उत्सुक हो रहे हो, जो सकल सिद्ध आत्माओं द्वारा उपभोग की गई है उस अनेक पुरुषों द्वारा भोगित गणिका सदृश मुक्ति सुन्दरी के पाणिग्रहण की इच्छा कर मुझ अक्षत कुमारी नवयौवना सुन्दरी को त्याग देने का उद्योग कर रहे हो ? क्या यही यादव भूषणके उपयुक्त कार्य है ? और जो आपको इसी प्रकार ही करना उचित था या आप मुक्ति स्त्री के सौंदर्य पर ही इतने लालायित हो चुके थे—आसक्त हो चुके थे, जो उसके सगम की इच्छा से अपने को रोक नहीं सके थे—तो प्रथमसे ही इतना आडम्बर क्यों रचा ? मुझे अपने प्रेम फाँस में क्यों फँसाया ? निष्ठुर ! अज्ञानी पशुओं पर इस प्रकार करुणा बुद्धि धारण कर—दया भाव धारण कर—उन्हें दुःख से छुड़ाकर मुझे इस प्रकार अकथ वियोग दुःख सागर में विलीन कर रहे हो, क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है ? हृदय हीन ! पशुओं के ऊपर इस प्रकार दया भाव धारण

करते हुए दया के द्वार पर करुणा की पुकार करती हुई मुझ अबला के ऊपर आपको दया नहीं आती, क्या यही आपकी दया का नमूना है ? वाहरे दया धारक !

नाथ ! हृदयेश्वर ! किंचित् विचार कीजिए। क्या दुःख समुद्र में पड़ी हुई मुझ अबला अनाथिनी का हाथ पकड़ कर मुझे सदैव के लिए विरह बड़वानल की तीव्र तरंगों में से निकालने का प्रयत्न आपका सर्वथा न्यून्य है अथवा आपके वियोग में जल रहित मीन की सदृश तड़पती हुई मुझ असहाया को इस प्रकार निरपराध निराधित त्याग कर आपका चला जाना ठीक है।

प्राणेश्वर ! अपने हृदय में किंचित करुणा लाइए और अपना रथ पीछे लौटाकर मेरी और समस्त उपस्थित जन समूह की चिन्ताको दूर कीजिए इसी में ही महा आनन्द और मङ्गल है"। राजीमती के इन हृदय द्रावक करुणा तथा स्नेह पूर्ण शब्दों का भगवान नेमिनाथ के हृदय पर किंचित भी प्रभाव नहीं पड़ा, वह अपने निश्चय से तनिक भी टस से मस नहीं हुए और उनकी समस्त प्रार्थनाओं व सभी अभिलाषाओं को ठुकराते हुए कुमार नेमिनाथ ने निम्न प्रकार संबोधन करते हुए कहा :—

"राजीमती ! मानवों का यह सांसारिक मोह ही अनन्त दुःखका कारण है: इसमें ही पड़कर मनुष्य अपनी अनन्त आत्म-

होकर अनेक शीतलोपचार किए; अनेक प्रकार के प्रयत्न करने पर कुछ समय पश्चात् दुःखिनी राजीमती को कुछ चेतना आई; तब वह हाय प्रियतम ! यह क्या किया ? मुझे अथाह वियोग समुद्रमें छोड़कर कहाँ चले ? इस प्रकार विलाप करती हुई रुदन करने लगी। उसे इस प्रकार महा दुःख में निमग्न हुए देखकर उसके समस्त कुटुम्बीजन उसके मनको धैर्य देते हुए कहने लगे—"हे सुकुमारी ! कभी एक हाथ से ताली नहीं बजती। तू प्रेम में आसक्त हुई—मोहवान हुई—उस निर्मोही के हृदय में किस प्रकार स्थान कर सकी थी ? वह तुझे किस प्रकार स्वीकार कर सके थे और यदि उन्हें तेरे ऊपर किंचित् भी मोह नहीं—प्रेम नहीं है तो तू उसके मोह में क्यों इस प्रकार पागल होकर अपने प्राणों को दुखित कर रही है ! क्या पृथ्वी मंडल में अन्य कोई रूप तथा गुणशाली राजकुमार नहीं है ? "कुमारी ! तेरा अभी गया ही क्या है। हां फेरा फिर जाने के पश्चात् की बात होती तब तो कोई प्रयत्न ही नहीं था, किन्तु तू तो अभी कुमारी ही है। कुमारी कन्या के लिए वरकी इस प्रकार चिंता क्यों ? यदि वह शुष्क हृदय तुझे नहीं चाहता है तो उससे सुन्दर अनेक राजकुमार तो पृथ्वी मंडल पर उपस्थित हैं। क्या संपूर्ण पृथ्वी मनुष्य विहीन थोड़ेही होगई है जो तेरे योग्य वर ही नहीं मिलेगा। कुमारी कन्या के लिए तो अनेको सुन्दर वर उपस्थित है। अस्तु हे कुमारी ! तू अपने

हृदयसे इस चिंता को त्यागकर आनन्द पूर्वक विचरण कर")
सखीजनों के इस प्रकार प्रलोभन पूर्ण वचन श्रवण कर उसके निर्मल हृदय में पातिव्रत धर्म की तीव्र भावना उदित होने लगी। वह उस समस्त सखी मंडल को संबोधन करती हुई कहने लगी—

"जो कदाचित् सूर्य पूर्व दिशासे प्रकट होना परित्याग पश्चिम दिशासे प्रकट होने लगे तो संभवतः ऐसा हो जाय, किन्तु आर्य कुमारिए जिस पुरुष का हृदय से एक बार वर चुकीं, जिसे अपना शरीर तथा हृदय समर्पण कर चुकीं उसे परित्याग कर वह किसी अन्य पुरुषसे कभी स्वप्न में संयोग करने की इच्छा नहीं करेंगी। ऐसी स्थितिमें मेरे लिए किसी अन्य वरकी कल्पना करना मेरे सम्बन्ध में व्यभिचार की कल्पना करना है। एक व्यक्ति को अपना शरीर समर्पण करके अन्य की इच्छा करना यह महान पातकी व्यभिचारिणी स्त्रियों का ही कर्तव्य है, परन्तु सर्व शीला आर्य कुमारियों का कर्तव्य नहीं है। अस्तु मैं इस अनुचित तथा कर्ण कटुवचनों के श्रवण करनेको स्वप्नमें भी तैयार नहीं हूँ। यद्यपि इस विवाह के अवसर पर सर्व साधारण के समक्ष उन्होंने मेरे हाथके ऊपर हाथ नहीं धारण किया तो क्या हुआ? मैं तो उनका अद्भुत हाथ अपने मस्तक पर धारण करने का महा मनवांछित लाभ पा चुकी हूँ। क्या हाथ पर हाथ धारण करनाही विवाह है? नहीं! कदापि नहीं! हृदय समर्प-

हीं विवाह है। यदि दुर्भाग्य वश मेरा उनका संयोग नहीं हुआ, प्रत्यक्ष में व्यावहारिक क्रियाएं नहीं हुईं तो क्या? कन्यादान ही विवाह नहीं है! पार्थिव शरीर दान विवाह नहीं है, विवाह है केवल हृदयदान!

हां यह चाहे हो सकता है कि पत्नी में दोष अवलोकन कर अथवा उसका तिरस्कारकर पति अपनी पत्नीका परित्याग करदे, किन्तु पत्नी का किसी भी अवस्था में यह कर्तव्य नहीं कि वह जिसे अपना शरीर और हृदय समर्पण कर चुकी है, जो एक बार प्रतिज्ञाबद्ध हो चुकी है, वह अपने उस भाग्यविधाता पतिका तिरस्कार अथवा अपमान करके उसका परित्याग करदे, किन्तु उसका प्रत्येक अवस्था में यही कर्तव्य है कि वह अपने हृदय सर्वस्व पतिके उस तिरस्कार को भी सत्कार स्वरूप मान कर पुनः उसकी पूर्ण कृपापात्र बनने का निरंतर उद्योग करे और प्रत्येक स्थिति में उसे संतोषित कर उसे प्रसन्न कर उसके भाग्य में अपने को भाग्यशाली समझे।

भारतकी कुमारियें जिस पुरुषको इच्छा पूर्वक एक बार वरण कर लेती हैं उसे त्यागकर वह अन्य पुरुष के संसर्ग की इच्छा नहीं करतीं। मैं अपना समस्त शरीर कुमार नेमिनाथ को समर्पण कर चुकी हूँ। इस मेरे शरीर पर एक मात्र उन्हीं का अधिकार है। उनके अतिरिक्त संसार के समस्त मानव मेरे पिता, पुत्र और भाई के समान हैं। अतः कन्याओं का मन एक

सांसारिक वैभव के सम्मुख अपने धार्मिक कर्तव्यों को कुछ भी नहीं समझती हैं। जिन्हें इस दुष्कृत्य के फल स्वरूप दुर्गति की वेदनाओं का कुछ भी ध्यान नहीं है। मैं भगवान् नेमिनाथ को अपना हृदय समर्पण कर चुकी हूं। क्या हुआ व्यवहार में यदि मेरा और उनका लौकिक संबंध विवाह के रूप में नहीं हुआ। संसार ने उसे नहीं देखा, किन्तु हृदय ने तो उसे स्वीकार कर लिया। अस्तु वही मेरे पति हैं, वही मेरे ईश्वर हैं वही मेरे सर्वस्व हैं उनके अतिरिक्त अन्य किसी व्यक्ति की इच्छा करके मैं अपने जीवन सर्वस्व पातिव्रत धर्म को, शील धर्म को कलंकित नहीं कर सकती। मैं कभी भी किसी अन्य व्यक्ति की इच्छा नहीं रखती। अब भविष्य में आप इस प्रकार हृदय विदारक शब्दों का मेरे प्रति कभी प्रयोग नहीं कीजिए"।

भारतीय कुमारिका धन्य ! तेरी अलौकिक धैर्यता ! तेरी अलौकिक धार्मिक दृढ़ता ! तेरे अपूर्व आत्मत्यागको नमस्कार धन्य है। तेरा आदर्श भारतीय महिलाओं में अपने अद्वितीय गौरव को अनन्तकाल पर्यन्त स्वर्णाक्षरों में अङ्कित रक्खेगा।

वर्तमान भारतीय कन्याएं जहां विषय लालसाओं के वश में हो अपनी कुत्सित इच्छाओं को अनेक प्रकार के वैभव और संपत्ति के प्रलोभनों के सम्मुख स्थिर नहीं रखतीं एवं अपने हृदय को पापों का भंडार बना देती हैं, अपने हृदय से क्षणिक

तथा उसका दृढ़ आग्रह जानकर समस्त जन निरुत्तर होकर खामोश हागए।

(७)

नेमिकुमार अपना रथ लौटाकर अपने राज्यमहल को चले गए। इसी समय लोकान्तिक देवोंने भगवान् के समीप उपस्थित होकर उनके वैराग्य की अत्यन्त प्रशंसा की, उनकी स्तुति की तथा पूजा की और इस प्रकार वैराग्य भावों का अनुमोदन करते हुए उन जगत्पूज्य प्रभु को मनोज्ञ शब्दों द्वारा संबोधन किया।

वैराग्य के उन्नत शिखर पर आरूढ़ हुए कुमार नेमिनाथ ने समस्त सांसारिक विषय वासनाओं से मोह त्यागकर उन्हें आत्मा के उद्धार का प्रतिबंधक समझ कर उन्होंने सम्पूर्ण रत्न जड़ित वस्त्राभूषणों को उतार कर फेंक दिया। विवाह के कंकण को मोह राजाके प्रबल साथी ममत्व का दृढ़ बंधन समझ कर उसे तोड़कर फेंक दिया और सहस्त्रारवन के अंतर्गत सुन्दर विशाल शिला पर एक हज़ार पुरुषों समेत जैनेश्वरी दीक्षाको धारण कर अत्यन्त दुष्कर तपश्चरण करने लगे। दीर्घकाल पर्यन्त आत्मध्यान में मग्न हुए उन योगी नेमिकुमार ने अपने नश्वर शरीर से सर्व प्रकार मोह त्यागकर उसे अनेक कठिन तपश्चरणों में मग्न कर दिया। कामदेव का मद मर्दन

देकर अनन्त जीवों का कल्याण किया: उनके दिव्य उपदेश को श्रवण कर अनेक भव्य पुरुष आत्मोद्धार के पथ की ओर आकर्षित हुए। उनमें से अनेक व्यक्तियोंने निर्ग्रन्थ-दीक्षा धारण कर अपना पूर्ण आत्म-कल्याण किया तथा अनेक व्यक्ति जो कि महाव्रत धारण करने को समर्थ नहीं थे, उन्हों ने गृहस्थ के उच्च व्रतों तथा नियमों को धारण किया। अनेक विधर्मियों ने पवित्र अहिंसा धर्म के रहस्य को समझकर उसके महत्व को जानकर अपने को जैनधर्म में दीक्षित किया। अनेक विदुषी महिलाओं ने भी दीक्षा ग्रहण कर विदुषी राजीमती के संघ में अपने को सम्मिलित किया।

बहुत समय के लिए भारत वर्ष भर में चारों ओर पवित्रता की ध्वनि गूंज उठी। सच्चरित्रता की तरंगें उमड़ने लगीं। इस प्रकार मिथ्या मार्ग में—सांसारिक वासनाओं में—संतप्त हुए संसारी मानवों के हितार्थ सर्व श्रेष्ठ सुख शांति का मार्ग प्रदर्शित कर अन्त में भगवान् नेमिनाथ ने शेष आयु, नाम, गोत्र और वेदनीय कर्मों की अवशिष्ट सत्ता को भी नष्ट कर अविचल और अनन्त सुखमय निर्वाण स्थान को प्राप्त किया।

वह अद्वितीय आत्मविजयी, बाल ब्रह्मचारी अनन्त दयावत्सल भगवान् नेमिनाथ हमारे हृदयों में पवित्रता की वृद्धि करें।

जैनसमाजका एकमात्र धार्मिकपत्र

"आदर्श जैन चरितमाला"

मुफ्त ही में !

जैन तथा अजैन सभी विद्वानों द्वारा प्रशंसित, प्राचीन जैन सिद्धान्त का संरक्षक और जैनत्व के महत्व का प्रदर्शक आत्मोद्धार के सुन्दर तथा सरलमार्ग का दर्शक और सर्व प्रकार के सामाजिक वैर विरोध से रहित एक मात्र धार्मिक पत्र है। जैनधर्म का उत्कर्ष चाहने वाले प्रत्येक जैनमात्र को निम्न पते पर पत्र भेज कर इसका ग्राहक बनकर जैन महात्माओं की महिमा को संसार में फैलाने के इस पुनीत कार्य में सहायक बनना चाहिए। वार्षिक मूल्य उपहार सहित २॥) होने पर भी २) की पुस्तकें उपहार में मिलती हैं जिससे एक वर्ष तक पत्र मुफ्त ही में पढ़ने को मिलता रहता है।

निवेदक—मूलचन्द्र जैन "वत्सल"
आदर्श जैन चरित्र माला कार्यालय, बिजनौर (यू०पी०)

थिक प्रेम किसी पर नहीं था। उसके अनेक सौन्दर्योपासक थे, किन्तु वह किसी को उपासिका न होकर केवल द्रव्योपासिका ही थी, उसके अनेक चाहक थे, किन्तु उसकी चाह केवलमात्र विक्री के लिए ही थी।

उसने अपनी रूप रस्सी द्वारा अनेक नवयुवकों को अपने विलास जालमें बांधकर उन्हें दुर्व्यसन गर्त में निमग्न कर दिया था। उस गर्तमें से कोई मानव अपने स्वास्थ्यका स्वाहा कर अनेक रोगों का उपहार प्राप्तकर निकल पातेथे तथा कोई अपना समस्त वैभव फूँककर पथ २ के भिखारी बनकर निकल पाते थे। सारांशतः कोई न कोई उपहार प्राप्त किये बिना उनका निकलना कठिन होता था।

उसकी सीधी सरल और कपट पूर्ण बातों से—उद्दीप्त विलास मदिरा के पान से उन्मत्त हुए विषय सुखके इच्छुक विवेक शून्य मानव उसके तीव्र, दाहक और प्रबल वेग से बहने वाले कृत्रिम प्रेम की भिक्षा चाहते थे उसके सौन्दर्य की उपासना में तन्मय हुए प्रसन्न रहना चाहते थे, किन्तु हाय! उन्हें क्या विदित था कि यह मायाचार का जीवित प्रतिबिंब, दुर्गति का जागृत दृश्य अधःपतन तथा सर्वस्व नाश का और अनेक आपत्तियों का विधाता केवल मात्र धन वैभव खींचने का जाल है। आज प्रातःकाल के समय में वह मगध सुन्दरी विलास सामग्रियों से परिपूर्ण अपनी उच्च अट्टालिका पर विराज-

मान थी। इसी समय कोकिल की मनोमोहक कूक ने और वसंत ऋतु की शोभापूर्ण सौन्दर्यमय मनोमोहक सौन्दर्यता ने उसके हृदय में राग रंग की एक साधारण वासना उत्पन्न करदी। उसका हृदय वसंत ऋतु की शोभा निरीक्षण करने के प्रलोभन को नहीं रोक सका और वह सौंदर्य के साज से विभूषित होकर वसंत का महोत्सव मनाने के लिए राजगृह के विशाल सौन्दर्य पूर्ण उपवन में क्रीड़ा करने को चलपड़ी। वह विनोदिनी उपवन के नवीन पादपों पर विकसित हुए मधुर पुष्पों का अवलोकन कर अत्यन्त मुदित हुई। मधुरस पूर्ण पुष्प राशिपर गुंजार करते हुए भ्रमरों के मधुर नादने उसके हृदय को अत्यंत विमुग्ध कर दिया। इस प्रकार उसका हृदय उपवन की उस मनोहारिणी शोभा का आलाप निरीक्षण कर उन्मत्त होरहा था। कोकिल का पंचम राग से और पक्षीगणों का मधुर कलरव तथा नवीन प्रेम का संदेश सुनाते हुए एक डाली से दूसरी डाली पर फुदकना हुए चहकना हृदय को हरण कर रहा था। उपवन के मनोहर सौंदर्य का निरीक्षण करते हुए चमत्कार ही इसकी दृष्टि [illegible] के वक्षस्थल पर पड़ते हुए रत्नहार पर पड़ी। इस दी अलौकिक प्रभा का निरीक्षण कर वह आनन्द से पुलकित होकर विचार करने लगी। मैं इसे पहन कर [illegible] व्यक्तियों को करने का उस में तारा कर भी इस प्रकार

प्रकाशपूर्ण हार का आज पर्यंत निरीक्षण नहीं किया। मेरा हृदय इस अमौलिक हार से आज तक भी भूषित नहीं हो पाया। वास्तव में यह मेरे लिए अत्यन्त लज्जा की बात है। तब इस हार द्वारा अवश्य ही मेरा हृदय भूषित होना चाहिए। अन्यथा मेरी समस्त चातुर्यता एवं रूप आकर्षिता निष्फल है।

प्राय नारियों की स्वाभाविक प्रकृति के अनुसार उन्हें बहुमूल्य उत्तम वस्त्राभूषणों से स्वतः अधिक प्रेम हुआ करता है। वह मनोमोहक चमत्कृत भड़कीले भूषणों के धारण करने में ही अपने को अत्यन्त सौभाग्यशालिनी समझती हैं। संभव है उन में गुणों की कोई उत्कृष्टता न हो, उन में विद्या का कोई प्रभाव न हो, उन में सच्चरित्रता तथा सदाचरणों का भी कोई गौरव न हो, किन्तु वह केवल मात्र नयनाभिरंजित वस्त्राभूषणों से अलङ्कृत होने पर ही अपने को अत्यंत महत्व शालिनी समस्त गुणालंकृता और कृत कृत्य मानती हुई संसार के अभिमान की वस्तु समझ लेती हैं। यही कारण है कि मानवी हृदय के वास्तविक भूषण एवं संसार में वास्तविक गौरव सम्मान तथा यश प्रदान करने वाले अनमोल रत्न विद्या, कला, नीति, चातुर्यता, संयम, सद्विवेक, सदाचरण तथा धार्मिकता आदि समस्त सद्गुणों का उनकी महत्वाकांक्षिणी बुद्धि के साम्हने कोई महत्व नहीं रहता। वह इन वास्तविक बहुमूल्य तथा स्थाई रत्नों का कोई मूल्य नहीं समझतीं और

हैं। हां यह अवश्य है कि वे अपनी रात्रि दिन की बढ़ी हुई विलास प्रियता की पूर्ति में विदेशीय, स्वत शक्ति तथा देशीय कला कौशलका ध्वंस करने वाले वस्त्र और अन्य पदार्थों तथा अपने को व्यर्थ अभिमान के उच्चशिखर पर आरूढ़ कराने वाले, देश की आर्थिक शक्ति का ह्रास करने वाले और द्रव्य का अपव्यय करने वाले आभूषणों को धारणकर उनके द्वारा अपना गृह तथा शरीर और अपनी संतान की व्यर्थ सजावट में अपने जीवन का समस्त बहुमूल्य समय, बुद्धि और कर्तव्य की इति श्री कर देती हैं। वह अपनी विलासवासना पूर्ति में इतनी तन्मय रहती हैं कि उसके अतिरिक्त उन्हें संसार में कोई अन्य कर्तव्य ही नहीं दीखता। उनकी इस मूर्खता के कारण बच्चों की शारीरिक शक्ति तथा सच्चरित्रता का भले ही नाश होजाए, उनके पति तथा संरक्षकोंको इसका कितना ही कटुक परिणाम क्यों न सहना पड़े, वह कितने ही दुर्व्यसनी तथा पातकी क्यों न हो जायँ, देश, समाज तथा धर्म का कितना ही सर्वनाश क्यों न हो जाय, किन्तु उन्हें स्वप्न में भी इसका किंचित् भी भान नहीं होता और हो भी कैसे वह तो अपनी विलास मई सृष्टि के अतिरिक्त और कोई धार्मिक, आत्मिक तथा देशोद्धार की सृष्टि ही नहीं समझती हैं और इसी विलास बन्धन में बद्ध हुई वह रोगिणी, आलसी, निर्बला और कर्तव्य विमुखा बनकर अपने जीवन को विषय वासना पूर्ति का कीड़ा बनाकर अपने

बहुमूल्य जीवन को नष्ट कर देती हैं। ऐसी स्थिति में मगध सुन्दरी जैसी विलास प्रिय वेश्या का उस नेत्र रंजक मनोरम हार को अवलोकन कर उस पर आकर्षित होना एक साधारण सी बात थी। उस मनोहर हार की आकर्षिकता ने उसके हृदय पर बड़ा विचित्र प्रभाव डाला और वह उसकी चमत्कृत प्रभा पर हृदयसे मोहित होगई। उसे उस रम्य स्थान का विनोद भी उस हार की प्राप्ति बिना शूल सा प्रतीत होने लगा और वह शीघ्रतः अपने स्थान पर पहुंचकर अन्य मनस्क तथा उदासीन भाव से शैय्या पर लेट गई।

(२)

विद्युत राजग्रही नगरी का प्रसिद्ध चोर था। वह अपने हस्त कौशल तथा छल कपट में अत्यंत दक्ष था। जिस किसी वस्तु के प्राप्त करने की इच्छा उसके हृदय में जाग्रत हो उठती थी शक्ति रहते हुए उस वस्तु के प्राप्त करने में उसे कोई कठिनाई नहीं पड़ती थी। वह अपने उद्देश्य पर दृढ़ रहता था! अपनी उद्देश्य पूर्ति के लिए उसे उसी प्रकार आतुरी शारीरिक शक्ति, दुर्बुद्धि और बलात् भी प्राप्त थी। उसे अपनी बुद्धि, शारीरिक शक्ति और कार्य कुशलता पर बड़ा विश्वास था। उसने अनेक धनिकों के यहाँ से अनेकों बहुमूल्य वस्तुओं का अपनी कार्य कुशलता द्वारा अपहरण किया था। अनेक बहु-मूल्य आभूषण तथा द्रव्य का अपहरण करने पर भी वह निर्-

मान हुई मगध सुन्दरी की उच्च अट्टालिका पर विद्युत ने उछलते हुए हृदय से प्रवेश किया। वह विचार कर रहा था कि मैं अभी जाकर उस सुन्दरी के मुस्कुराते हुए मुग्धकर कटाक्षपात करते हुए प्रकाशमान सुन्दर मुख का निरीक्षण कर अपने हृदय को तृप्त करूँगा, मेरे वहाँ पहुँचते ही उस सुन्दरी के हर्ष का स्रोत उमड़ उठेगा और वह प्रेमपूर्वक अपने मधु रस मिश्रित मिष्ट वचन विन्यास द्वारा मुझे अनंत आनन्द प्रदान करेगी। अहा! उसके वार्तालाप में कितनी मधुरता है, उसकी सुन्दरता क्या अनुपम है और उसका मृदु हास विलास तो अत्यन्त मुग्धकारी है। वास्तव में वह मुझ पर प्यार भी अधिक करती है। जहां इस वैभव पूर्ण स्थान में अनेक सुन्दर युवक तथा धनिक उपस्थित हैं, वहां उन्हें छोड़कर मेरे ऊपर उसका इतना प्यार होना, है भी मेरे सौभाग्य की बात और हाँ मैं भी तो उसके लिए, उसकी इच्छा पूर्तिके लिए अपने जीवन की भी कुछ परवाह नहीं करता। हां आज मेरे हाथ खूब द्रव्य प्राप्त हुआ है। जब मैं उसके साम्हने इतना द्रव्य उपस्थित करूंगा तब उसका हृदय हर्ष से अवश्य फूल उठेगा। वह प्रसन्नता पूर्वक मेरी ओर निरीक्षण करती हुई अवश्य अपना पूर्ण प्रेम प्रदर्शित करेगी। इस प्रकार विचार करते हुए उसने मगध सुन्दरी के विलास पूर्ण सामग्रियों से सुसज्जित विलासागार में प्रवेश किया।

उसने उसके सामहने समस्त द्रव्य स्थापित कर उसकी प्रसन्नता पूर्ण मुख मुद्रा निरीक्षण करने के लिए उसके सुन्दर मुख मंडल पर दृष्टि डाली, किन्तु उसके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा, जब उसने देखा कि शैय्या पर उदासीन भाव से लेटी हुई उस सुन्दरी ने उस अपार द्रव्य की ओर किंचित् भी आँख उठा कर नहीं देखा और वह निराश भाव से उसी शैय्या पर पड़ी रही। उसके हृदय में इस दृश्य से अनेक आशंकायें उदित होने लगीं। यह क्या! इसकी इतनी उदासीनता क्यों? क्या मैंने इसकी आज्ञा के प्रतिकूल को कार्य किया है? अथवा मुझ से कोई अपराध हो गया है जो आज यह मेरी ओर इस प्रकार आँख उठाकर भी नहीं देखती उसने बड़े प्रेम पूर्वक मधुर स्वर से कहा—प्रिये! आज तुम्हारे हर्ष पूर्ण प्रभा से चमकते हुए मुख मंडल पर यह उदासीनता की काली रेखा क्या उदित हो रही है? शीघ्र कह! तेरी इस उदासीनता का कारण क्या है, क्योंकि मैं एक क्षण भर भी तुझे इस प्रकार शोक मग्न नहीं देख सकता। तेरी इस निराशा से मेरा हृदय दुःख के वेग से अत्यंत व्याप्त हो रहा है। का शीघ्र विदित कर तेरे ऊपर किस कष्ट ने आक्रमण किया है

अपने ऊपर अनुरक्त हुए विद्युत के इस प्रकार मा शब्दों का श्रवण कर एक मधुर कटाक्षपात करती हुई मग सुन्दरी ने कहा—प्राण वल्लभ! तुम मुझ पर अपना इत

अधिक प्रेम प्रदर्शित करते हो, मुझे अपने प्राण से अधिक प्यारी कह कर अपने शुष्क स्नेहका दावा करते हो, किन्तु मैं तो समझती हूँ यह तुम्हारा प्रेम केवल शाब्दिक ही है—कोरा दिखावटी ही है। वास्तव में तुम मेरे ऊपर हृदय से कुछ भी प्रेम नहीं करते हो, तुम मुझे हृदय से नहीं चाहते हो।

विद्युत के सिर पर मानों बिजली गिर पड़ी! उसने धड़कते हुए हृदय से कहा—प्रिय! मैंने आज तक तेरी किसी भी आज्ञा का उल्लंघन नहीं किया; तेरी इच्छित अभिलाषाएं पूर्ण करने के लिए मैंने कभी अपने जीवन की कुछ भी परवा नहीं की फिर भी तेरे हृदय में मेरे प्रेम के प्रति इस प्रकार अविश्वास क्यों हो रहा है? प्रिय! सचमुच मैं तेरी एकमात्र दृष्टि के ऊपर ही अवलंबित रह कर जीवित रह रहा हूँ। इस संसार में मुझे अपने प्राणों से भी इतना स्नेह नहीं है जितना तेरे प्रति है इससे अधिक विश्वास अपने प्रेम का मैं तेरे लिए क्या दिला सकता हूँ? इतने पर भी मेरे प्रेम पर अविश्वास करने का क्या कारण है? उसे स्पष्ट विदित कर। मैं उसे प्राण पण से दूर करने का प्रयास करूँगा।

मगध सुन्दरी ने किंचित हास्य मिश्रित मधुर स्वर से कहा—प्रियतम! मैं यह जानती हूँ कि तुम मेरे लिए अपना सार्वस्व अर्पण करने के लिए तैयार रहते हो, मुझे उत्तम बहुमूल्य वस्तुएँ प्रदान कर मुझे प्रसन्न करने का प्रयत्न करते हो,

किन्तु इतना होने परभी मैं देखती हूँ कि मेरा कंठ धीरेण श्रेष्ठी के उस उत्कृष्ट सुन्दर तथा मनोमोहक हार से विभूषित नहीं हुआ है जिसमे भूषित होकर मैं अपनी अपूर्व सुन्दरता के द्वारा अपने प्यारे को प्रसन्न कर सकती, उस रमणीय हार के बिना मेरा समस्त श्रृंगार अपूर्ण सा हो रहा है। यदि वह हार मुझे प्राप्त होता तो उसके सौन्दर्य से परिपूर्ण होकर मैं तुम्हारा कितना हृदय आकर्षित करती ? आह! आज जब से मैंने उस अपूर्व शोभापूर्ण हार को देखा है—अहा! वह कितना रमणीय था—मेरा जी उस पर तभी से मोहित होगया है। अब यदि वह हार आप जैसे कुशल प्रियतमके द्वारा भी मुझे प्राप्त नहीं हो सका तो मेरा जीवन ही क्या ? इन शब्दों को उसने बड़े ही दुःख पूर्ण स्वर में कहा। विद्युतने उसे सान्त्वना देते हुए कहा—प्राण वल्लभे ! यह कौन सी बड़ी बात है, क्या तू इसी तुच्छ बात के लिए इतनी उदास हो रही थी ? यह तो विद्युत के बाएं हाथ का खेल है। उँह उस तुच्छ हार के लिए इतनी बेचैनी ! अच्छा देख अभी क्षण मात्र में तेरा कंठ उस हार से विभूषित न कर दूं तो मेरा नाम विद्युत नहीं।

मगध सुन्दरी ने अपना पूर्ण प्रेम दिखलाते हुए कहा—प्रियतम ! उक्त हार प्रदान कर आप मेरे हृदय के सर्व स्वामी बनेंगे। आपके प्रेम की परीक्षा पूर्ण होगी। देखूँ कितनी

शीघ्र इस हार से भूषित होकर मैं तुम्हें प्रसन्न कर सकती हूँ। इतना कहते हुए उसने विद्युत की ओर एक मधुर कटाक्ष-पात किया।

मगध सुन्दरी के मधुर कटाक्षपात और हास विलास से लुब्ध होकर विद्युत उस हार को हरण करने के लिए शीघ्रतः श्रीकीर्ति सेठी के महल की ओर चलदिया। अपने अपूर्व हस्त कौशल द्वारा सेठी के शयनागारमें प्रवेशकर उसने उसके कण्ठ में पड़े हुए प्रभापूर्ण हार का हरण कर लिया। वह हार को लेकर महल से नीचे उतरा। महल से उतरते ही उसने कुछ दूर पर खड़े हुए राज्य सैनिकों को देखा। उन्हें देखते ही उस के चेहरे पर शंकापूर्ण भाव उदित हो गया।

उसने हारको चुरा तो लिया था, किन्तु वह उसकी चमत्कृत प्रभा को नहीं छुपासका। सैनिक उसके हाथ में एक बहुमूल्य चमत्कृत पदार्थ का देखकर उसे पकड़ने केलिए उसकी ओर दौड़े। विद्युत सैनिकों को अपने पीछे दौड़ते हुए आता देखकर अपनी रक्षा के लिए बड़ी तीव्र गति से दौड़ा। वह इधर उधर से चक्कर काटता हुआ अनवरत स्मशान के समीप पहुँचा। सैनिक भी उसके पीछे तीव्र गतिसे दौड़ रहे थे। उसने जब पीछे की ओर देखा तो उसे ज्ञात हुआ कि सैनिक क्षण मात्र में अब मुझे पकड़ना ही चाहते हैं, अस्तु उसने सैनिकों के हाथ से अपने बचने का उपाय सोचा। उसे

को प्रति बोधक श्रेष्ठ विद्या सम्पादन, पुस्तकावलोकन, सच्च-
रित्र व्यक्तियों के उच्चादर्शों के मनन आदि ज्ञान सामग्रियों से
सर्वथा वंचित रखकर भ्रष्ट खिलौने, विदेशीय वस्त्राभूषणों तथा
अन्य स्वतरंजित सामग्रियों से आच्छादित रखती हैं। भ्रष्ट
चरित्र हीन विचार तथा असदाचारी व्यक्तियों के संसर्ग में
सर्वथा स्वयं स्वतन्त्रतापूर्वक छोड़ देती हैं तथा प्रत्येक अव-
स्था में उन्हें अनुचित खेल, दुर्व्यसनपूर्ण विनोद तथा चञ्चल
क्रीडाओं में निमग्न किए रहती हैं तथा इस अनुचित प्रेम, इसी
जीवनगति का सहायक कुत्सित प्यार और सच्चरित्रता, पवि-
त्रता, सरलता, तथा साहस ध्वंसक कारणों में व्यस्त रखकर
उनकी भविष्य मानवी उन्नति लतिका को नष्ट भ्रष्ट कर देती
हैं वहां विदुषी जननी न अपने पुत्रों निरंतर सद्विद्या उपा-
र्जन, श्रेष्ठ पुस्तक पठन सच्चरित्र व्यक्तियों के सदैव समागम
तथा पूर्व महान त्यागी, आदर्श धर्मोद्धारक महात्माओं के
श्रेष्ठ जीवनचरित्रों के श्रवण आदि उत्कृष्ट कार्यों में तथा उनके
चिन्तन में ही निमग्न रखती थी। उनका सिद्धान्त था कि
बाल्यावस्था में बालक जितनी शुभ विद्याओं, कलाओं तथा
नैतिक ज्ञान का सम्पादन कर लेता है वही उसमें जीवन के
अन्तिम समय पर्यंत श्रेष्ठ संस्कारों द्वारा वर्द्धित होकर स्थिर
रहता है तथा इसी के द्वारा जीवन संग्राम में वह यश मान-
ता और सुखको प्राप्त करता है। सुयोग्य माताओं के संरक्षण

में कुमार वारिषेण ने समस्त उत्कृष्ट विद्याओं का अध्ययन कर अपने को पूर्ण संयमी सद्गुणी तथा सदाचारी बना लिया था।

यही कारण था कि गृहस्थावस्थामें प्रवेश करके, अमित वैभव तथा विलास के आगार राजप्रासाद में अनेक सुन्दरी लावण्यवती बालाओं के संसर्ग में रहते हुए भी वह अपनी प्रतिमाओं नियमों तथा आत्म संयम के साधनों को संरक्षित रखते थे। निश्चित कालमें वह इन्द्रिय दमन और मनोनिग्रह के साधनोंका अभ्यास किया करते थे तथा इसी अभिप्राय से वह अष्टमी तथा चतुर्दशी के दिवस समस्त विषय वासनाओं से पूर्ण विरक्त रहकर इन्द्रिय निग्रह तथा क्रोधादि विकारों के निग्रह के लिए सर्व प्रकार के भोजन का त्यागकर उपवास किया करते थे तथा रात्रि के समय पूर्ण निस्पृहता पूर्वक किसी एकान्त श्मशान भूमि में कायोत्सर्ग धारणकर आत्म-ध्यान में मग्न रहते थे। आज चतुर्दशी की रात्रि का समय था अस्तु वह नगर के निकट वर्ती एकांत श्मशान भूमि में कायोत्सर्ग पूर्वक आत्मचिन्तन में निमग्न थे। सैनिकों के हाथ से अपने को बचाते हुए उस बहुमूल्य हार को चुराकर विद्युत चोर उस स्थान तक आ पहुँचा था जहाँ पर कुमार वारिषेण ध्यान निमग्न खड़े हुए थे. सैनिकों द्वारा अपने को किसी प्रकार बचते हुए न देखकर उसने बड़े कौशल से हार

में लिए हुए हार को ध्यानस्थ हुए कुमार वारिषेण के सम्मुख फेंक दिया और स्वयं एक ओर भागकर अदृश्य हो गया. वह उस हार को गिराकर इस चातुर्यता के साथ भागा कि बेचारे सैनिकों को उसके भागने का तनिक भी पता नहीं लग पाया, उन्होंने प्रसन्नता पूर्वक हार को पृथ्वी पर से उठा लिया किन्तु उसकी तीक्ष्ण चमक में उसके चुराने वाले के स्थान पर ध्यान निमग्न वारिषेण कुमार को देखा।

कुमार वारिषेण के सम्मुख उक्त बहुमूल्य हार निरीक्षण कर सैनिक गण बड़े आश्चर्य में पड़ गए, वह विचारने लगे यह क्या ? क्या वास्तव में राजकुमार वारिषेण चोर है क्या यह जागृति का दृश्य है अथवा स्वप्न ! क्या ऐसा होना भी सम्भव है, क्या हमारी दृष्टि हमें धोखा तो नहीं दे रही है ! तब क्या इन्हीं ने यह बहुमूल्य हार हरण किया है किन्तु इस का अच्छा बनाया है, किस प्रकार ध्यान मग्न हो गए मानो साक्षात् सात्विकता का प्रतिबिम्ब ही विचित्र हो, वाहरे ढोंगी ! खूब कपट का जामा पहिन रक्खा है मानो इस प्रकार ढोंग धारण करने से हम इनको इस धूर्तता में आकर इन्हें छोड़ देंगे। वाह ! हमें इन्होंने निरामूर्ख ही समझ रक्खा है कि मानो हम कुछ समझ ही नहीं सकेंगे। यदि यह राजपुत्र हैं तो क्या हुआ, क्या राजपुत्र होने पर ही इतना गुरुतर अपराध करते देखकर भी हम इसे छोड़ देंगे, कदापि नहीं। हम राजा के

विश्वास पात्र सेवक हैं हमारे द्वारा यह कभी नहीं हो सका कि राज्य सम्बन्ध धनिकता अथवा किसी विशेष प्रभाव के कारण ही हम किसी अपराधी को इस प्रकार छोड़ दें; नहीं ! हमारे न्याय शील महाराजा की ऐसी आज्ञा कदापि नहीं है, उनकी आज्ञा है कि चाहे राजा हो अथवा रंक, धनिक हो अथवा निर्धन, सबल हो अथवा निर्बल न्याय के सम्मुख प्रत्येक शक्ति एक समान हैं नव हार हरण करने वाले इस धूर्त राजपुत्र को पकड़ कर शीघ्र ही इसे महाराजा के समीप ले चलना हमारा प्रधान कर्तव्य है, ऐसा निश्चय करते हुए उन्होंने ध्यान मग्न हुए निर्दोष वारिषेण कुमार को चोरी के अपराध में पकड़ कर गिरफ्तार कर लिया।

(४)

प्रातः कालीन समय था, महाराजा श्रेणिक राज्यसिंहासन पर आरूढ़ थे। उनका मुख मंडल आज बड़ा गंभीर था सभासद तथा समस्त मंत्रीगण नितांत मौन हुए स्थिर भाव से बैठे हुए थे, समस्त सभामंडल शून्य और स्तब्ध हो रहा था। इसी समय राजकोतवाल की ओर निरीक्षण कर करके मौन को भंग करते हुए महाराजाने कहा—कोतवाल! अपराधी को राज दरबार में उपस्थित करो। महाराजा की आज्ञा का शीघ्र पालन किया गया और कुमार वारिषेण अपराधी के रूप में राज्य सभा में उपस्थित किए गए। एक क्षण में इस घटना

वारिषेण के ठीक स्थान पर पड़ा। उनके मस्तक विहीन शरीर के दिग्दर्शन संबंधी भयानकता का अनुभव करने वाले वधिकों ने एक क्षण के लिए अपने नेत्रों को बंद कर लिया। किन्तु उन्होंने शीघ्र ही दुःख, ग्लानि तथा करुणा भाव सहित उनके शरीर की ओर दृष्टि डाली। वह जानते थे कि कुमार का सुन्दर मस्तक पृथ्वी मंडल पर पड़कर उसे रक्त रंजित करेगा, किन्तु उनके आश्चर्य का कोई ठिकाना न रहा जब कि उन्होंने देखा कि तलवार का पूर्ण वार किया हुआ उनका सुन्दर मस्तक कल्पवृक्षों की दिव्य पुष्प मालाओं से विभूषित हो उनके सुन्दर शरीर की शोभा बढ़ा रहा है; वह सरलता पूर्वक प्रसन्न हृदय से उस स्थान पर निर्भयता सहित खड़े हुए हैं। उनका मुख मंडल अनंत दीप्ति से चमक रहा है और अपनी सुगंधि से दिशाओं को सुरभित करने वाली मनोहर माला एवं उनके कंठ को शोभित कर रही हैं। उन्हें शंका होने लगी कि कहीं यह स्वप्न तो नहीं है, उन्होंने अपने हाथ की तलवार पर दृष्टि डाली वह पहिले जैसी सुन्दर और चमकीली थी, उस पर जरा भी रक्त का धब्बा नहीं पड़ा था। वह इस दृश्य से अत्यंत चकित होकर इस आश्चर्य जनक घटना की सूचना देने के लिए महाराजा श्रेणिक के समीप उपस्थित हुए।

मूर्ख मानव क्रोध के आवेश में आकर अहो।
अविचार रत, कर बैठते हैं कार्य कुत्सित अगहो॥
कार्य के पश्चात् उसका कटुक फल चखते हैं ज्यों।
पूर्ण प्रतिभा, शक्ति एवं बुद्धि संयुत हों न क्यों॥

वधिक के द्वारा कुमार वारिषेण के संबंध में इस प्रकार आश्चर्य जनक घटना का होना श्रवण कर महाराजा स्वयं उस

स्थान की ओर चलने का प्रयत्न करने लगे। इसी समय उन्हों ने राज्य दरबार में प्रवेश करते हुए एक व्यक्ति को देखा—यह विद्युत चोर था। विद्युत यद्यपि अत्यन्त निष्ठुर प्रकृति का व्यक्ति था, किन्तु जब उसने प्रजाप्रिय कुमार वारिषेण का निर्दोष प्राण नष्ट होना श्रवण किया, तब उसका हृदय जो कभी भी पापसे भयभीत नहीं हुआ था इस दुष्कृत्य से कातर हो उठा। इसी क्षण उसने कुमार वारिषेण की विचित्र रीति से प्राणरक्षा हुई जानकर तथा अपने अपराध के प्रकट होने के भयसे वह शीघ्र महाराजा के समीप उपस्थित हुआ। वह उनके चरणों पर गिर पड़ा तथा गद्गद् स्वर से कहने लगा—महाराज! आप मुझे जानते होंगे। मैं नगर का प्रसिद्ध चोर विद्युत हूं। मैंने बड़े २ अपराध किए हैं। यह अमौलिक हार भी मैंने ही चुराया था, किन्तु सैनिकोंके हाथसे जब मैंने अपने को बचते हुए नहीं देखा तब ध्यानस्थ हुए कुमार के सम्मुख इस हार को फेंक दिया था। कुमार वास्तव में निर्दोष हैं। इस हार का हरण करने वाला अपराधी मैं ही हूं। विद्युत चोरके पश्चाताप पूर्वक कहे हुए नम्र शब्दों को श्रवणकर कुमार वारिषेण की निर्दोषता पर महाराजा को पूर्ण विश्वास हो गया। उन्होंने शीघ्रतः वधस्थान की ओर प्रस्थान किया।

कल्पवृक्ष की मालाओं से सुशोभित पुण्य की पवित्र आभा से परिपूर्ण वारिषेण कुमार की गंभीर मुद्रा का निरीक्षण कर महाराजा श्रेणिक को अपने द्वारा दी गई अन्याय पूर्ण दंडाज्ञाके ऊपर अत्यन्त पश्चाताप हुआ। उनका हृदय पश्चाताप के वेगसे भरआया, वह अपने पुत्रका दृढ़ालिंगन कर अपने हृदय के आतापको अश्रुओं के द्वारा निकालते हुए रोते रोते बोले—

पुत्र! क्रोध की तीव्र उत्कटता के कारण विचार शून्य होकर तेरे लिए जो मैंने अन्याय से दंडाज्ञा दी थी उसका मुझे अत्यन्त खेद है। वास्तव में तेरे जैसे दृढ़ सत्यव्रती सच्चरित्र पुत्र के लिए सर्व प्रजाजन के समक्ष तिरस्कार पूर्ण अनेक दुर्वचनों का प्रयोग कर मैंने बड़े भारी अपराध का कार्य किया है। हा! क्रोध के वेग ने मुझे बिल्कुल ज्ञान शून्य बना दिया था। मुझे तेरी धार्मिकता का कुछ विचार नहीं रहा था। पुत्र वास्तव में तू सर्वथा निर्दोष है, परन्तु मेरे इस अन्याय तथा अविचार पूर्ण कार्य के लिए मुझे क्षमा प्रदान कर। मेरे हृदय में जो तीव्र पश्चाताप की अग्नि प्रज्वलित हो रही है उसे अपने अनन्त क्षमावारि द्वारा प्रक्षालित कर। तू वास्तव में सच्चा धर्मात्मा और दृढ़ प्रतिज्ञ है, धार्मिक दृढ़ता के इस अपूर्व चमत्कार ने तेरी सत्यनिष्ठा को अखिल संसार में अखण्ड रूप से विस्तृत कर दिया है। देवों द्वारा किए गए आश्चर्य जनक दृश्यों ने तेरी सच्चरित्रता पै अपनी दृढ़ छाप लगादी है। पुत्र! तेरी इस अलौकिक दृढ़ता तथा क्षमता के लिए हार्दिक धन्यवाद है।

महाराजा के मुँह से उपरोक्त पश्चाताप पूर्ण करुण उद्गारों को श्रवण कर कुमार सुदर्शन का हृदय विनय तथा प्रेम से आविर्भूत हो उठा वह कहने लगे पिताजी! आप यह क्या कह रहे हैं! आपने क्या अपराध किया है और आप किस प्रकार अपराधी कहे जा सकते हैं। पिता जी! आपने तो केवल न्याय की रक्षा करके अपने कर्तव्य का पालन किया है। क्या कर्तव्य का पालन भी किसी अपराध में गिना जा सकता है? हां यदि आप मुझे इस प्रकार दोष युक्त देखकर पुत्र प्रेम

पर किस प्रकार स्थापित होती । चन्दन जितना घिसा जाता है, पुष्पों को यंत्र में जितना पेला जाता है उसमे उतनी ही अधिक सुगन्धि उत्पन्न होती है । स्वर्ण जितनी तेज़ आंच में डाला जाता है । उतनी ही अधिक उसकी चमक बढ़ती है इसी प्रकार धर्मात्मा पुरुषों के ऊपर जितनी आपत्तिएं आती हैं उन की यश, कीर्ति तथा धार्मिकता उतनी ही अधिक वृद्धि को प्राप्ति होती है । अस्तु ! पिताजी आप अपने हृदय में किसी प्रकार का खेद उत्पन्न न कीजिए । आपका इसमें तनिक भी दोष नहीं है ।

कुमार वारिषेण के आनंद दायक महत्वपूर्ण शब्द श्रवण कर महाराजा ने प्रेम से प्लावित होकर कहा—पुत्र ! तेरे जैसे सौभाग्य शाली पुत्र का इस प्रकार कहना ठीक है । तू उन्नत विचार शील है। अच्छा ! अब राजधानी को चल कर वियोग से व्यथित हुई अपनी माता को दर्शन देकर प्रसन्न करो । क्योंकि वह तेरे वियोग में अत्यन्त दुखित हो रही है ।

अपने थोड़े से जीवन में संसार नाटक की अनेक दशाएं निरीक्षण कर कुमार वारिषेण का हृदय संसार से विरक्त हो उठा था । उनके मन में संसारी स्नेह के प्रति अत्यन्त घृणा उत्पन्न हो गई थी, अस्तु उन्होंने विरक्तता पूर्वक महाराजा श्रेणिक से कहा—पिता जी ! अब इस नश्वर संसार के क्षणिक विषय विलास में—क्षण भंगुर वैभव के प्रलोभन में—लिप्त रहने की मेरी किंचित् भी इच्छा नहीं है । अस्तु मैं तो अब इस संसार से विरक्त रहकर महाव्रत धारण करूंगा । यह कह कर विनय पूर्वक पिता से आज्ञा मांगकर माता तथा पत्नियों के समीप उपस्थित होकर उनके मोह को शान्तकर वह कुमार

(२)

महाराजा वासुदेव की राज्य सभा समस्त वीर साम-न्तों की उपस्थिति से सुशोभित थी, महाराजा की सेना के प्रधान सेनापति और अनेक युद्ध विजयी योद्धागण योग्य स्थान पर खड़े हुए थे, सभा में पूर्ण शान्ति विराजमान थी। महाराजा वासुदेव आज किसी घोर चिन्ता में निमग्न ज्ञात होते थे। प्रधान मन्त्री तथा सेनापति आदि समस्त कर्म-चारी गम्भीर दृष्टि से उन के मुखमण्डल की ओर निरीक्षण कर रहे थे।

अधिक समय के मौन के पश्चात् महाराजा वासुदेव ने उच्च स्वर से कहा—"सेनापति और मेरे वीर योद्धाओं! तुम्हें ज्ञात होगा कि हमारी आज्ञा में रहने वाले महासामन्त भैरवादित्य ने द्वारिका की राज्य सत्ता के विरुद्ध उपद्रव करना प्रारंभ किया है। केवल यही नहीं किन्तु वह अन्य राजाओं को भी भड़का कर राज्य के विरुद्ध घोर षड्यन्त्र रच रहा है, तथा निरपराध प्रजा का उत्पीड़न कर रहा है, अस्तु राज्या-धिकार की रक्षा तथा प्रजा के कष्ट को दूर करने के लिए उस का दमन करना अत्यन्त आवश्यक है। तुम लोग बड़े वीर और पराक्रमी हो तुम्हारे प्रत्येक रोमरमें राज्य भक्ति का प्रभाव भरा हुआ है। मुझे तुम लोगों की शक्ति पर पूर्ण विश्वास है, किन्तु मैं अपने हृदय में इस बात का निश्चय

कन किया पश्चात् उन्होंने उसके धीरत्व की परीक्षा करने के लिए निम्न प्रकार कहना प्रारंभ किया :—

प्रियपुत्र ! मैं जानता हूँ कि तू वीर तथा पराक्रमी है, किंतु तू अभी युद्धकला ज्ञान से रहित अल्प वयस्क बालक है और वह अपराजित अनेक नरेशों के सैन्यबल से युक्त प्रचंड बलशाली है जिसके अनेक रणविजयी सेनापतियों के हृदय के जोश उसके प्रभाव के सामने ठंडे होरहे हैं तब उसके ऊपर विजय प्राप्त करना तेरे जैसे बालक के लिए नितांत हास्य जनक है। तेरे साहस के लिए धन्यवाद है, किन्तु तेरा उसके साथ युद्ध कर उसे विजित करने का विचार करना भ्रमजनक है। पुत्र ! तू अपने बालकोचितविनोद में निमग्न रह मैं शीघ्र ही जाकर उस अपराजित के मद को पराजित करूँगा।

पिता के उपरोक्त शब्दों का श्रवण कर कुमार अपने जोश को नहीं रोक सके। उन्होंने नम्रतापूर्ण स्वर से कहा—पिता जी ! क्या अल्प वयस्क होने से सिंह पुत्रों का पराक्रम गजराज के सन्मुख हीन हो सकता है ? क्या वह क्षीण शरीर धारी [illegible] सिंह सुत दीर्घ शरीर धारी गजेन्द्र के मस्तक को [illegible] नहीं कर डालता, क्या आप नहीं जानते हैं कि छोटा अग्निकण बड़े भारी ईंधन के ढेर को एक क्षण में भस्म कर देता है, यदि मैं अल्प वयस्क हूँ तो क्या इसी से

किंचित् विषय पदार्थ प्राप्त होने पर उत्तमोत्तम उपभोग की वस्तुएं उपस्थित होजाने पर समस्त शुभाचरणों से भृष्ट हो जाते हैं। उनका ध्यान, अध्ययन, व्रत, उपासना का ढोंग काफ़ूर हो जाता है। किंचित् धन वैभव की प्राप्ति में अथवा सुन्दर भोगों के संयोग में वह अपने को उसके तीव्र प्रलोभन से नहीं बचा सकते हैं और उनकी समस्त पूजा, उपासना, संयम और कृत्रिम त्याग का बालू मई दुर्ग नष्ट भृष्ट हो जाता है।

गजकुमार युवा था, वह सौन्दर्य का उपासक था, वह सुन्दर था, वह अनंत वैभव का स्वामी था, उसके हाथ में राज्य की ओर से इच्छित अधिकार प्राप्त हुआ था वह रूप और सौन्दर्य की मदिरा पी पी कर मदोन्मत्त होने लगा। उस के प्रबल मदनोन्माद के सामने सती महिलाओं के सतीत्व का कोई महत्व नहीं रहा। कुमारियों की लज्जाका कोई मूल्य नहीं रहा। धर्म मर्यादा का कुछ महत्व नहीं रहा। उसे लोक लज्जा का कोई भय नहीं था। वह राजपुत्र था, उस के हाथ में प्रभुता थी, वह चाहे जिस सुन्दरी रमणी के साथ इच्छा अथवा अनिच्छा पूर्वक अपनी काम लिप्सा को तृप्त करता था।

उसके इस अनाचार की चर्चा क्रमशः प्रजाजन के कर्णों में व्याप्त होने लगी। जनता ने उस के अनाचार की आवाज़ को प्रथम बड़े धीमे स्वर से श्रवण किया, किन्तु वह स्वर

रूप-यौवन तथा मोहकता की चर्चा गजकुमार के कानों तक पहुंची। उसका हृदय बेकल हो उठा। उसने दृढ़ संकल्प किया, कि पांसुल सेठ की उस सुन्दरी रमणी का मैं अवश्य आलिंगन करूंगा। उसका यह अनुपम सौन्दर्य मेरे द्वारा अछूता रह सके, यह कदापि नहीं हो सकता।

दुष्कर्मों की पूर्ति के अनेक साधन अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं। जहां उत्तम कार्यों, धार्मिक क्रियाओं तथा सदाचरण के प्रचार के लिए आप को ढोल पीटने पर भी कोई सहृदय साथी प्राप्त न होगा, वहां वेश्या नृत्य, व्यभिचार साधन और दुष्कृत्य पूर्ति तथा काम क्रीड़ा के लिए अनेक प्राण न्योछावर करने वाले मित्र नाम धारी शत्रु प्राप्त हो जायेंगे। फिर गजकुमार तो राजपुत्र था, वैभव पूर्ण था। अधिकारयुक्त था। दुराचारी मित्रों को और चाहिए ही क्या! वह तो किसी धनिक दुराचारी युवक की प्राप्ति के लिए निरन्तर प्रयत्न किया ही करते हैं। जहां कोई युवक फंसा कि उन के पौबारह हैं। अस्तु राजपुत्र गजकुमार की इच्छा पूर्ति के लिए उसके अनेक मित्रों ने पांसुल सेठ की सुन्दरी पत्नी के लाने का बीड़ा उठाया। बीड़ा ही नहीं उठाया, किन्तु उन्होंने अपनी कुटिल नीति और चातुर्य द्वारा उसे कुमार के सम्मुख उपस्थित कर दिया।

लिए उनके धर्मतीर्थ में उपस्थित हुए। उन्होंने बड़ी विनय से अनन्य भक्ति से उनकी पूजा की—स्तुति की और उनके उन्नत आत्मगुणों का ध्यान किया। राजपुत्र गजकुमार भी भगवान् के समवशरण में उनका दर्शन करने को गया था।

स्वार्थ त्यागी महात्माओं का भाषण पतित से पतित मानवों के हृदयों में भी अपना अद्भुत प्रभाव डालता है, निरंतर तीव्र पापों में संलग्न रहने वाले व्यक्ति भी एक बार उनकी पवित्र वाणी को श्रवण कर अपने आत्मा को पावन बना लेते हैं, वास्तव में शुद्धात्मा महर्षियों की निर्मल आत्मा का प्रभाव पातकी व्यक्तियों की आत्मा पर अक्षीण रूप से पड़ता है। वह उनके समस्त अनाचारों और पाप तापों को एक क्षण में नष्ट कर देते हैं सचरित्रता से शून्य, विषय पथ पर विचरण करने वाले स्वार्थी मानवों के कोरे उपदेश, कोरी वाक्य पटुता, शुष्क प्रलाप का जबकि मानवों के अन्तस्तल पर किंचित् प्रभाव नहीं पड़ता वहां पर सदाचारी सत्कर्तव्यनिरत महात्माओं की सीधी सादी सरल वार्ताएं मानव जीवन सुधार सदाचार वृद्धि तथा धर्म निर्माण में आश्चर्य जनक प्रभाव [illegible] है

अपने को विषय वासना [illegible] मानिगत में व्यस्त रखने वाले, स्वार्थ साधनों में [illegible] रहने वाले, कीर्ति वैभव, अधिकार सत्ता की [illegible] रहने वाले

फोनोग्राफ के रेकार्ड की सदृश शुष्क उपदेश तथा कोरी शिक्षा की म्पीचों का फवारा छोड़ने वाले अधार्मिक व्यक्ति यदि अन्य व्यक्तियों के सुधार की अपेक्षा, धर्म पद्धति पर आरूढ होने वाले भोले व्यक्तियों को विलास, सभ्यता और विदेशीयता का नंगा चित्र दिखलाने की अपेक्षा, अन्य व्यक्तियों को धार्मिक सदाचारी, स्वार्थ त्यागी, आत्म शक्ति शाली बनाने का कोरा ढोंग रचने की अपेक्षा यदि प्रथम स्वयं अपने हृदय कल्मष को प्रक्षालने की चेष्टा करें, वासनाओं के बंधन से निकलने की चेष्टा करें, दूसरों का सार्वस्व अपहरण करने वाली तर्क बुद्धि को तिलांजुली दें और जिन बातों के प्रचार करने का दम भरते हैं उनमें प्रथम अपने आपको आविर्भूत करें। यदि अपने को स्वार्थ, विषय और प्रलोभनों की कीचड़ से निकालने का उचित उद्योग करें, अपने अन्तः करण का सुधार करें तो उन के शुष्क भाषणों की अपेक्षा, गला फाड़ फाड़ कर चिल्लाने की अपेक्षा, कालमों के कालम रोशनाई से रङ्ग देने की अपेक्षा और कलम कुठार को जिस तिस प्रकार चलाने की अपेक्षा कहीं अधिक प्रभाव प्राप्त कर समाज, देश और धर्म का वास्तविक कल्याण कर सकते हैं।

भगवान नेमिनाथ पूर्ण आत्म विजयी, संयमी, सर्वदर्शी और स्वार्थ त्यागी महात्मा थे। उनके हृदय में केवल मात्र जगदोद्धार की भावना थी। वह निष्प्रेही महात्मा दुखित

अन्तरंग में मदन-मद का तीव्र अन्धकार विलय हो गया। विलास मदिरा का नशा भंग हो गया। पापाचरण का प्रभाव नष्ट हो गया। उस के अन्तरंग ज्ञाननेत्र खुल गये। उसे अपने पूर्व दुष्कार्यों पर पूर्ण पश्चाताप हुआ, पूर्व पाप स्मरण से उसका हृदय कांप उठा, पाप का मैल उसके नेत्रों द्वारा अश्रुओं के रूप में बह कर पृथ्वीतल को प्रक्षालित करने लगा।

वह विचारने लगा—ओह ! इस काम पिशाच ने मेरे आत्मा पर अपना इतना तीव्र प्रभाव डाल रक्खा था कि उसकी उन्मत्तता में मग्न हुए मुझे उचित का कार्य अकार्य का तथा अपने भविष्यका कुछ भी ध्यान नहीं रहा। वह मुझे तीव्र मनो-भवों की मदिरा पिलाकर अनाचार के क्षेत्र में स्वतन्त्रता पूर्वक नाच नचा रहा था और मैं उस दुष्ट मदनकी अंगुलीके इशारे पर नाच कर अपने सर्व पतन की ओर तीव्र गतिसे अग्रसर हो रहा था। मैं उसका गुलाम बना हुआ अपनी आत्मसत्ता को सर्वथा भूल रहा था। ओह ! मेरी आत्मा का इतना घोर पतन ! नहीं ! अब नहीं होगा। मैं इस मदनके साम्राज्य को इसी समय नष्ट भ्रष्ट करूं गा। इसकी प्रभुता को इसके गर्व का चूर चूर करूं गा। वह उठा उसने उठकर भगवान् के दिव्य चरणों में अपना मस्तक का आरोपित कर दिया, वह गद्गद् कंठ से बोला—भगवन मैं बड़ा पतित मानव हूं। मैंने संसार-

रिक विनाश वासना में अपने जीवन को व्यस्त कर अपना सार्वस्व नष्ट कर डाला है। इतना ही नहीं मैंने उन पाप कृत्यों के पीछे कमर बांधी थी, जिनके कटुक फलों का स्मरण कर मेरा हृदय भय के वेग से अचानक काँप उठता है। प्रभो! आप शरण वत्सल हैं, दया सागर हैं। आप इस पतित को अपनी शरण में लेकर इसकी रक्षा कीजिए। इसके आत्म सुधार का मार्ग प्रदर्शित कीजिए। प्रभो! आप मेरा सुधार कीजिए।

दयावत्सल भगवान् नेमिनाथ ने कुमार गजकुमार का पश्चाताप पूर्ण करुण क्रन्दन श्रवण कर कहा—भव्य! तूने पूर्व पापों के लिए तीव्र पश्चाताप कर उनके कटुक फल को बहुत कुछ कम कर दिया है। वास्तव में पूर्व पाप फल को कम करने तथा नष्ट करने के लिए और अन्तःकरण के सुधार के लिए प्रायश्चितके अतिरिक्त कोई उत्तम उपाय नहीं है। जिस प्रकार तीव्र अग्नि की आंच से मैल शीघ्र जल जाता है। उसी प्रकार पश्चाताप की तीव्र अनलसे कठिनसे कठिन पापोंका फल नष्ट हो जाता है, किन्तु हां! प्रायश्चित हृदयसे होना चाहिए—पाप कृत्यों के प्रति हृदय में पूर्णग्लानि होना चाहिए। भव्य! तू शीघ्र ही पूर्व किए हुए भयानक पाप फल से सावधान होगया, यह तेरे पूर्व पुण्य का उदय समझना चाहिए. अब तेरा आत्म-कल्याण होने में कुछ समय का ही विलंब है। तू अपनी आत्मा

वहां वह महान् ऐश्वर्य से परिपूर्ण, दिव्य शरीर को धारण कर दीर्घकाल पर्यन्त उत्तम सुख का उपभोग करेंगे।

वास्तव में महात्माओं का मन दुःसह कष्ट और उपद्रव के अवसर पर अत्यन्त पुलय समाधि में स्थिर रहता है। वह वास्तविक तत्त्वज्ञान को प्राप्त हो जाते हैं। तत्त्वज्ञान की महत्ता का प्रभाव उनकी समस्त आत्मा में विलक्षण रूप से परिपूर्ण रहता है। अस्तु जिन मानवों को संसार तथा शरीर जनित कठिन दुःखों से बचे रहने की इच्छा है, जो निरन्तर आत्म सुख के आनन्द में निमग्न रहना चाहते हैं, जो घोर आपत्ति, दुःख तथा उपसर्गों के अवसर पर अपने आपको दृढ़, निश्चल रखना चाहते हैं, उन्हें चाहिए कि वह यत्न पूर्वक तत्त्वज्ञान प्राप्ति का उपाय करें, अपने आपको उत्तम ग्रन्थों के अध्ययन की ओर आकर्षित करें और व्यर्थ की बातों में, प्रलाप में अपनी आत्म शक्ति का अपव्यय न करके ध्यान पूर्वक आत्म तत्त्वका अनुसंधान करें, तभी उन्हें पूर्ण सुख शान्ति और आत्म शक्ति की प्राप्ति होगी।

जिन्होंने सेठ द्वारा किए हुए कठिन उपसर्गों को तृण सदृश भी नहीं गिना, जो अपने आत्म ध्यान में तन्मय रहे, वह आत्म विजयी सुदर्शन राजकुमार हमारे हृदयों में तत्त्वज्ञान की महत्ता प्रदान करें।

उनके उत्तम गुण चिन्तवन में ही व्यतीत होता था। उनकी विषय वासनाएं, सीमित और शांत थी।

प्रायः अधिकांश महिलाओं का स्वभाव संसारी मनुष्यों के रूप देखने, उनकी सुन्दरता का दर्शन करने तथा उनकी प्रशंसा श्रवण करने में अत्यन्त आसक्त होता है। वह गुप्त रूप से दूसरे मनुष्यों के गुण सुनकर उनके सुन्दर रूपको देखकर अपने नेत्र और मनको प्रसन्न किया करती हैं। लेकिन यह क्रिया धीरे २ उन स्त्रियों के मनमें खोटे भाव उत्पन्न कर उन्हें पतिव्रत धर्म से विचलित करने में पूरी तरह से सहायक होती है। इसके सिवाय अधिकतर विलास प्रिय महिलाएं अपने को अनेक प्रकार की शृङ्गार तथा दिखावटी विलास की सामग्रियों से विभूषित कर रात दिन फिजूल की दिखलावट, सजावट में अपने को लगा देती हैं और भोग विलास की दासी की तरह बनी रहती हैं। उनका विलासी मन अनेक तरह के विलासों द्वारा कभी भी पूर्णता को प्राप्त नहीं होता। यदि आज किसी वस्तु की कमी है तो कल किसी दूसरी ही वस्तु का अभाव है इसी प्रकार वह अपनी विलास वासना के वश में पड़ कर रातदिन अपने पतिको उन शृङ्गार बनाव की वस्तुओं के लिए तंग करती रहती हैं तथा कोई २ महिलाएं तरह २ के गहने और भड़कीले कपड़े तथा सुगन्धित वस्तुओं से अपने शरीर के बनाने में ही लगी रहती हैं और

अपने सुन्दर रूप तथा सुन्दरता को सर्व साधारण के साम्हने प्रदर्शित कर अपने दिल के विकार भावों की पूर्ति करती हैं। किन्तु यदि निष्पक्ष दृष्टि से विचार किया जाय तो यह सभी कार्य स्त्री जाति के घोर पतन के कारण हैं और उनकी कमा-नता, विवेक शून्यता तथा विलास प्रियता को दर्शित कर उनका गौरव तथा बड़प्पन नष्ट करते हैं।

महारानी मृगावती में उपरोक्त दुर्गुणों में से एक भी दोष नहीं था। वह सरला पति प्रेम पूर्ण, परम पतिव्रता सदैव सद्धर्म उपासना तथा स्त्रियों के योग्य कार्यों और पतिसेवा में ही अपने जीवन को लगाइने में अपना कर्तव्य समझती थी।

महाराजा शतानिक इस प्रकार गुणवती तथा विदुषी पत्नी को पाकर अत्यन्त संतुष्ट थे दोनों का जीवन सुखमय रहते हुए व्यतीत होता था।

इसी नगर में चित्रविद्या में अत्यन्त कुशल एक युवक चित्रकार रहता था। वह बड़ा बुद्धिशाली और चित्रकला में प्रवीण था। उसे चित्रविद्या का बड़ा शौक था, किन्तु वह चित्रकला में पूर्ण प्रवीणता प्राप्त करने की इच्छा से साकेतन नगर में रहने वाले पूर्ण कुशल चित्रकार के यहां चित्रकला की निपुणता प्राप्त करने के लिए गया। वह चित्रकार चित्रकला में परिपूर्ण था। युवक चित्रकार उसके पास चित्रकला सीखता हुआ कुछ समय को उसी के समीप रहने लगा।

उनके उत्तम गुण चिंतवन में ही व्यतीत होता था। उसकी विषय वासनाएं, सीमित और शांत थी।

प्रायः अधिकांश महिलाओं का स्वभाव संसारी मनुष्यों के रूप देखने, उनकी सुन्दरता का दर्शन करने तथा उनकी प्रशंसा श्रवण करने में अत्यन्त अग्रसर होता है। यह गुप्त रूप से दूसरे मनुष्यों के गुण सुनकर उनके सुन्दर रूपको देखकर अपने नेत्र और मनको प्रसन्न किया करती हैं। लेकिन यह क्रिया धीरे २ उन स्त्रियों के मनमें खोटे भाव उत्पन्न कर उन्हें पतिव्रत धर्म से विचलित करने में पूरी तरह से सहायक होती है। इसके सिवाय अधिकतर विलास प्रिय महिलाएं अपने को अनेक प्रकार की शृङ्गार तथा दिखावटी विलास की सामग्रियों से विभूषित कर रात दिन फिजूल की दिखलावट, सजावट में अपने को लगा देती है और भोग विलास की दासी की तरह बनी रहती हैं। उनका विलासी मन अनेक तरह के विलासों द्वारा कभी भी पूर्णता को प्राप्त नहीं होता। यदि आज किसी वस्तु की कमी है तो कल किसी दूसरी ही वस्तु का अभाव है इसी प्रकार वह अपनी विलास वासना के वश में पड़ कर रातदिन अपने पतिको उन शृङ्गार बनाव की वस्तुओं के लिए तंग करती रहती हैं तथा कोई २ महिलाएं तरह २ के गहने और भड़कीले कपड़े तथा सुगन्धित वस्तुओं से अपने शरीर के बनाने में ही लगी रहती हैं और

सुरप्रिय नाम बड़ा बलवान और निर्दई यक्षराज रहता है। वह प्रतिवर्ष इसी समय पर एक बड़ा भारी मेला भराता है और इस मेले पर वह खुद आता है, उसने इस तरह का नियम बना रक्खा है, कि मेले के समय पर नगर का कोई कुशल चित्रकार मेरे समान ही मेरा चित्र उतार कर मुझे दे और अगर उस चित्र में असावधानी से उसे ज़रा भी गलती मालूम होती है, तो वह उस चित्रकार को बड़ी निर्दयता से मार डालता है और यदि कदाचित मरण भय से किसी चित्रकार द्वारा मेले के समय पर उसका चित्र नहीं बनाया जाता है तो वह सारे नगर में महामारी आदि महारोगों को पैदा कर नगर निवासियों को बड़ी तकलीफ देता है जिस से नगर के बहुत से मनुष्य अकाल मृत्यु के ग्रास बन जाते हैं। इस आपत्ति से छुटकारा पाने के लिये एक वर्ष नगर के सभी चित्रकार अपने प्राण बचाने की इच्छा से इस नगर को छोड़ कर दूसरे स्थानों में रहने लगे। इस पर उस दुष्ट यक्ष ने क्रोधित होकर इस नगर में महामारी का प्रकोप कर नगर निवासियों को बड़ी पीड़ा पहुँचाई उसके द्वारा उत्पन्न किए गये उस रोग से अनेक प्राणी बड़े दुःखी और संतापित हुए तथा अनेक प्राणियोंके प्राण नष्ट हुए। तब यहां के महाराजाने दूसरी जगहों में चले जाने वाले उन चित्रकारों के पास अपने राज्य सेवक भेजकर उन्हें बलपूर्वक यहाँ पकड़ मंगवाया और एक सभा

(२)

प्रातःकाल का समय था, प्रवीण चित्रकार अपने स्थान पर बैठा हुआ था। इसी समय साक्षात् यमदूत समान राज्य सेवकों (सिपाहियों) ने उसके मकान पर आकर उसके नाम का राज्य मुहर से अङ्कित एक आज्ञा पत्र प्रदान किया। राज्य सेवकों द्वारा प्रदान किए गए आज्ञा पत्र को देखकर उसकी वृद्धा मां किसी घोर विपत्ति की आशङ्का से उदास होने लगी। उसी समय उसे किसी बात का स्मरण हुआ और वह दुःखित होकर करुण स्वर में विलाप करने लगी। एक क्षण में ही उसके दुःख का वेग बढ़ गया और वह मूर्छित होकर गिर पड़ी। कुछ समय के बाद चेतनावस्था प्राप्त होने पर वह बड़े ज़ोर से विलाप करती हुई रोने लगी। उसकी इस प्रकार अचानक ही दुःखावस्था को देखकर कौशंबी के युवक चित्रकार ने बड़ी उत्सुकता से पूछा—"मां! क्या कारण है जो आप इस प्रकार हृदय द्रावक विलाप द्वारा अपने मनको दुःखित कर रही हैं। मुझे विदित कीजिए आपको किस दुश्चिन्ता ने आकर सताया है मैं यथासाध्य आपके दुःख दूर करने का उपाय करूंगा"।

चित्रकार के वचनों को श्रवण कर उसके दुःख का वेग कुछ कम हुआ, उस ने करुण स्वर से अपने कष्ट की कहानी सुनाना प्रारम्भ की यह कहने लगी—पुत्र! इस नगर में एक

लिए बहुत सुखदायक स्वर्ग और मोक्ष के देने में सभी धर्मों में उत्तम है"।

चित्रकार के इस तरह परोपकार को लिए हुए हित-कारी वचन सुनकर वह और भी अधिक खुश हुआ और प्रसन्नता सहित बोला—"हे चित्रकार ! मैं तेरे कहे माफ़िक आगे के लिए जीवन भर कभी भी जीव हिंसा नहीं करूंगा। मुझे मालूम हो गया, कि असल में जीव हिंसा महा अनर्थ की करने वाली है। जो मनुष्य जीवहिंसा करते हैं, उन्हें तो नरक निगोद रूप खोटी गतियों में दुःख अवश्य ही भोगने पड़ते हैं, लेकिन उस के द्वारा ज़रा सा भी विनोद या चित्त प्रसन्न करने के कारण मुझे भी दुर्गति का बन्ध हुआ है। आज तक मैं बड़ी गलती पर था, तूने मुझे सावधान कर मेरा बड़ा उपकार किया है। लेकिन चित्रकार ! यह वरदान मांग कर तो तू ने मेरा ही और बड़ा भारी उपकार किया है और उत्तम गति मिलने का उपाय बतलाया है इस लिए मैं तुझ से फिर भी कहता हूं कि तू अपने हित के लिए कुछ और वरदान मांग"।

यक्षदेव को अपने ऊपर इस तरह प्रसन्न होते देखकर चित्रकार का साहस और भी बढ़ा वह फिर से बोला—"हे देव ! जो आप मुझे दूसरा वरदान देने के लिए खुश हुए हैं तो मेरी दूसरी इच्छा यही है, कि आप जीवों के ऊपर अत्यन्त

लिए बहुत सुखदायक स्वर्ग और मोक्ष के देने में सभी धर्मों में उत्तम है "।

चित्रकार के इस तरह परोपकार को लिए हुए हित-कारी वचन सुनकर यक्ष और भी अधिक खुश हुआ और प्रसन्नता सहित बोला—"हे चित्रकार! मैं तेरे कहे माफ़िक आगे के लिए जीवन भर कभी भी जीव हिंसा नहीं करूंगा। मुझे मालूम हो गया, कि असल में जीव हिंसा महा अनर्थ की करने वाली है। जो मनुष्य जीवहिंसा करते हैं, उन्हें तो नरक निगोद रूप खोटी गतियों में दुःख अवश्य ही भोगने पड़ते हैं, लेकिन उस के द्वारा ज़रा सा भी विनोद या चित्त प्रसन्न करने के कारण मुझे भी दुर्गति का बन्ध हुआ है। आज तक मैं बड़ी ग़लती पर था, तूने मुझे सावधान कर मेरा बड़ा उपकार किया है। लेकिन चित्रकार! यह वरदान मांग कर तो तू ने मेरा ही और बड़ा भारी उपकार किया है और उत्तम गति मिलने का उपाय बतलाया है इस लिए मैं तुझ से फिर भी कहता हूँ. कि तू अपने हित के लिए कुछ और वरदान मांग"।

यक्षदेव को अपने ऊपर इस तरह प्रसन्न होते देखकर चित्रकार का साहस और भी बढ़ा वह फिर से बोला—"हे देव! जो आप मुझे दूसरा वरदान देने के लिए खुश हुए हैं तो मेरी दूसरी इच्छा यही है, कि आप जीवों के अनन्त संतार

अनुरोध से जीव हिंसा बंद हो गई" धीरे २ यह समाचार सारे नगर भर में फैल गया। इस समाचार से नगर-निवासियों को बड़ा आनन्द हुआ और सारे नगर निवासी उस के इस प्रयत्न की बड़ी प्रशंसा करने लगे। राजाने चित्रकार को अपने समीप बुलाकर उसका उचित रीति से खूब ही आदर और सम्मान करते हुए उसकी बड़ी प्रशंसा की और इस खुशी में उसने अपने नगर में एक बड़ा आनंदोत्सव किया और चित्रकार को चित्र विशारद की पदवी प्रदान की।

युवक चित्रकार ने चित्रकला में अनिर्वचनीय सफलता और प्रवीणता प्राप्त की और कुछ समय तक वहाँ रहकर वह अपने स्थान को लौट आया।

(३)

महाराजा शतानिक चित्र विद्या के बड़े शौक़ीन थे, उन्हें अपनी चित्रशाला में कुछ प्राकृतिक दृश्यों के चित्राम बनवाने की इच्छा हुई। उन्होंने अपने राजमन्त्री द्वारा युवक चित्रकार की अधिक प्रशंसा सुन रक्खी थी, इस लिए उन्होंने चित्रकार को आदर सहित बुलाकर उसे अपनी चित्रशाला को इच्छानुसार सुन्दरता पूर्ण चित्रों से चित्रित करने की आज्ञा दी।

चित्रकार ने अपनी चित्रकला की अपूर्वकुशलता दिखलाते हुए नाना प्रकार के पशु पक्षियों, सुन्दर जल झिरने,

अनुरोध से जीव हिंसा बंद हो गई" धीरे २ यह समाचार सारे नगर भर में फैल गया। इस समाचार से नगर-निवासियों को बड़ा आनन्द हुआ और सारे नगर निवासी उस के इस प्रयत्न की बड़ी प्रशंसा करने लगे। राजाने चित्रकार को अपने समीप बुलाकर उसका उचित रीति से खूब ही आदर और सन्मान करते हुए उसकी बड़ी प्रशंसा की और इस खुशी में उसने अपने नगर में एक बड़ा आनंदोत्सव किया और चित्रकार को चित्रविशारद की पदवी प्रदान की।

युवक चित्रकार ने चित्रकला में अनिर्वचनीय सफलता और प्रवीणता प्राप्त की और कुछ समय तक वहाँ रहकर वह अपने स्थान को लौट आया।

३

महाराजा शतानिक चित्र विद्या के बड़े शौकीन थे, उन्हें अपनी चित्रशाला में कुछ प्राकृतिक दृश्यों के चित्राम बनवाने की इच्छा हुई। उन्होंने अपने राजमन्त्री द्वारा युवक चित्रकार की अधिक प्रशंसा सुन रक्खी थी, इस लिए उन्होंने चित्रकार को आदर सहित बुलाकर उसे अपनी चित्रशाला को इच्छानुसार सुन्दरता पूर्ण चित्रों से चित्रित करने की आज्ञा दी।

चित्रकार ने अपनी चित्रकला की अपूर्वकुशलता दिखलाते हुए नाना प्रकार के पशु पक्षियों, सुन्दर जल झिरने,

मनोहर वन, उपवन और ऊंचे पहाड़ की चोटियों आदि के स्वाभाविक अद्भुत दृश्यों से महाराजा की चित्रशाला को थोड़े ही समय में पूर्ण दर्शनीय बना दिया। चित्रों के अङ्कित करने में उस ने अपनी सारी चित्रकला की पराकाष्ठा को प्रदर्शित कर दिया था। किसी भी मनुष्य का मन उस की इस अद्भुत तथा चमत्कारिणी चित्रकला को देखकर प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकता था। दीवालों पर उकीरे हुए जङ्गली प्राणियों के चित्र निर्जीव होते हुए भी सजीव जैसे प्रतीत होते थे, उन जन्तुओं के स्वरूप को देखकर भय, हर्ष और करुणा का भाव जागृत हो उठता है। किसी भयानक जन्तु को क्रोध पूर्ण दृष्टि से देखते हुए अवलोकन कर हृदय में भय का संचार हो उठता था। सुन्दर पक्षियों की ओर देखकर प्रतीत होता था, मानो यह सब बात चीत करने के लिए ही उत्सुक होरहे हैं। इस प्रकार क्रूर तथा शांत हृदय वाले पशु पक्षियों की सजीव मुद्राओं और रमणीक वन उपवन के दृश्यों से वह चित्रशाला परिपूर्ण हो गई थी।

(४)

संध्या का समय था, चित्रकार अपनी चित्रशाला में बैठा हुआ चित्र रचना कर रहा था। इसी समय राज महल की उच्च अट्टालिका पर बैठी हुई महाराजा शतानिक की सुन्दर नवयौवन पूर्ण रानी मृगावती के पैर का अंगूठा उसकी दृष्टि-

इस पापी चित्रकार को ले जाकर इस का प्राण नष्ट कर दो यह दुराचारी एक क्षणमात्र भी जीवित रक्खे जाने के योग्य नहीं है। महाराजा की इस प्रकार आज्ञा श्रवण कर चित्रकार का मन अत्यन्त दुखित हुआ, किन्तु उस ने भय को दूर करते हुए साहस पूर्वक विनीत स्वर से महाराज से प्रार्थना की—महाराज! इस चित्र को देखकर इस के विषय में आप के हृदय में मेरे प्रति जो खोटी शंका उत्पन्न हुई है। वह निःसार है, क्योंकि यह बात विश्व विख्यात है, कि यक्षदेव के द्वारा वरदान मिलने से मुझमें यह शक्ति मौजूद है कि किसी मनुष्य के एक भी अवयव को देखकर मैं उस का साक्षात् ज्यों का त्यों चित्र अङ्कित कर सकता हूँ। इसी वरदान के प्रभाव से ही मैं ने कल संध्या समय आप के समीप बैठी हुई महारानी के अँगूठे मात्र को देखकर यह चित्र अङ्कित किया था। इस दाग़ को देखकर खुद मेरे मन में भी सन्देह हुआ था। इस लिए इस के निकालने का मैंने पूरा [illegible] था। किन्तु अनेक उपाय करने पर भी मैं इस [illegible] चित्र पर से अलग नहीं कर सका। तब [illegible] विचार किया था, कि आज इसी समय इस [illegible] भूषणों से विभूषित कर दूंगा, किन्तु इसी [illegible] अचानक ही आगमन हो जाने के कारण मैं [illegible] इसके अङ्ग को नहीं ढक सका। [illegible]

अविवेकता से परिपूर्ण होता है उन के हृदय में किसी साधारण मनुष्य की कला चातुर्यता की तनिक भी कद्र नहीं होती है यही कारण है, कि वर्तमान के कला विद पुरुषों के लिए विशेष सहायता तथा आदर न मिलने के कारण भारतीय कलाओं का सद्भाव नष्ट हो रहा है और भारत के कला निपुण कारीगर पग पग पर ठोकरे खा रहे हैं और भारतीय लोग अन्य देशों की बनी हुई दिखावटी वस्तुओं पर मोहित होकर उनके गुलाम बनकर देश की कारीगरी और द्रव्य का सर्वनाश कर रहे हैं। उचित प्रमाण देने पर भी अधिकारियों तथा राजाओं का हृदय दुरित शंका से परिपूर्ण ही रहा आता है तथा वह अपनी अविचारता द्वारा अन्य पुरुषों के उन्नति जनक उपायों के नष्ट कर देने में किसी प्रकार की भी दया धारण नहीं करते और इस प्रकार गुण ग्राहकता विहीन धनमत्त पुरुष अपनी अविवेकता द्वारा अपने को अज्ञानता का पात्र प्रदर्शित करते हैं।

राजा के इस अन्याय पूर्ण कार्य से चित्रकार का मन बहुत दुखित हुआ। उसने विचारा—ओह! देखो! इस विवेक शून्य नृपति ने निरापराध ही मुझे इस प्रकार दंड देकर मेरा तिरस्कार किया। अब मेरा भी यही कर्तव्य है कि मैं इस की उस परम प्यारी रानी से इसका वियोग कराके अपने अपमान का पूर्ण बदला चुकाऊँ।

महाराजा चंडप्रद्योत उस अनिंद्य सुन्दरी के मनोमुग्ध कारी अकृत्रिम सौन्दर्य का निरीक्षण कर अवाक् रह गया। उसकी आँखें अनायास ही उस चित्र पर आकर्षित होगईं। वह विचारने लगा "अहा ! क्या यह कोई देव कन्या है अथवा नारी का रूप धारण कर साक्षात् रति ही इस मानव लोक में उपस्थित हुई है। इतनी सुन्दरी रमणी तो आज पर्यन्त मैंने कभी देखी ही नहीं" यह अपने आश्चर्य का निराकरण करने की इच्छा से चित्रकार से बोला—"कलाविद ! कहिए। यह मनहरण हारी परम सुन्दरी रमणी किस सौभाग्यशाली के हृदय को मोहित करती है ऐसा कौन भाग्यशाली है जिसे यह स्त्री रत्न प्राप्त है"।

चित्रकार बोला—"महाराजा ! यह मनमोहक रमणी आपके प्रसिद्ध बलवान् शत्रु राजा शतानिक की रानी है। महाराज ! इसकी अभूतपूर्व सुन्दरता का इस चित्र द्वारा क्या अनुमान किया जा सका है इस चित्र में तो उसकी रूप माधुर्यता का थोड़ासा इशारा भी अंकित नहीं हुआ है यदि आप इसका साक्षात निरीक्षण करते तब आप उसके सौन्दर्य का अनुभव करते। महाराज ! यह इस विश्व सौन्दर्य की संरक्षिता अनन्य सुन्दरी रमणी है।

सुन्दरी मृगावती के चित्रका निरीक्षण करते ही महाराजा चंडप्रद्योतन के हृदय में कुत्सित रागभाव की उत्पत्ति

(६)

अवन्ती नगरी का राजा चन्डप्रद्योतन था यह बड़ा शूर-वीर और पराक्रमी था, किन्तु वह इन्द्रिय विलास वासना में निरन्तर रता रहा करता था। वह अत्यन्त विलास प्रिय था। किसी कारण वशात् महाराज शतानिक और महाराजा चन्डप्रद्योतन में परस्पर मनोमालिन्य उत्पन्न होगया था और बढ़ते बढ़ते यह इतना अधिक होगया कि दोनों परस्पर एक दूसरे के कट्टर शत्रु बन गए थे।

चित्रकार ने इस साधन को अपने अपमान का बदला चुकाने के योग्य समझा। वह कुछ समय का अपने मन में अनेक प्रकार के विचार करने लगा। थोड़ी देर के बाद ही उसका हृदय मानों हर्ष कल्लोलों में मग्न हो उठा। उसने अपने मन में कहा—बस यही उपाय मेरे अपमान का बदला चुकाने के लिए ठीक होगा और वह यही होगा कि इस परम सुन्दरी रानी मृगावती के ऊपर महाराजा चन्डप्रद्योतन को मोहित करा दिया जावे, बस फिर तो मेरे अपमान का बदला अपने आप चुक जायगा। इस प्रकार उसका हृदय कोटि विचारों से पूर्ण होगया और उसने उसी समय अपनी चातुर चित्रकला द्वारा महारानी मृगावती का अत्यन्त सुन्दर मनोहर चित्र बनाया और उसे उत्तम वस्त्र पर चित्रित कर महाराजा चंडप्रद्योतन के सन्मुख उपस्थित किया।

वह किसी कार्य के विषय में अपने राज्य मन्त्रियों से सलाह कर रहे थे। इसी समय द्वारपाल ने राज्य सभा में प्रवेश कर नमस्कार पूर्वक निवेदन किया।

"महाराज! कौशाम्बी नगरी से आया हुआ एक भव्य पुरुष अपने को महाराजा चंडप्रद्योतन का दूत प्रख्यात कर रहा है और वह आपके समीप उपस्थित होने की आज्ञा मांगता है"।

"कौशाम्बी का दूत"! महाराजा एक क्षणको संशय में पड़ गए। पश्चात् द्वारपाल से बोले- द्वारपाल। जाओ! उसे मेरे सम्मुख शीघ्र उपस्थित करो।

दूत ने राज्यसभा में प्रवेश कर महाराज को नियमानुसार नमस्कार किया पश्चात् वह अत्यन्त मधुर शब्दों में अपने प्रभु का जिस प्रकार संदेश [illegible] करने लगा। वह बोला— महाराज! समस्त राजाओं का मस्तक प्रदेश मुकुट धारण करने वाले समस्त राज मण्डल से सेवित मेरे प्रभु ने जिस प्रकार निवेदन किया है—" कि आप के यहाँ एक सुन्दर [illegible] है आपके राज भण्डार में एक सुन्दर कन्या रत्न उपस्थित है। यह समान [illegible] ऐसे महान् [illegible] महाराजाओं के रनिवास में ही शोभा को प्राप्त होते हैं। जिस प्रकार मणि मुकुट के साथ ही शोभा को प्राप्त होता है, मिट्टी के साथ नहीं। इसी प्रकार आपके [illegible]

में कभी आज पर्यन्त श्रवण नहीं किया गया, अस्तु जीवन सुख से घबड़ाए हुए, राज्य नीति, लोक मर्यादा तथा धर्म का उल्लंघन करने वाले, उस अपने मदोन्मत्त प्रभु से जाकर कहदो कि तेरे कथनानुसार यह महाराणी रूपी मुकुट तेरे जैसे क्षुद्र नीच प्रकृति नराधम के चरणरज में स्वप्न में भी प्राप्त हो सके ऐसी कल्पना करना आकाश कुसुम को तोड़ने समान है। यह महाराणी तो इस मेरे मस्तक रूप दिव्य अन्तःपुर की शोभा वर्द्धन योग्य ही है, यदि तू अपने भग्न प्रताप हुए अन्तःपुर, को तथा प्रमादत हुए जीवन और नष्टता के गर्त में प्रवेश होने वाले राज्य को बचाने की आशा रखता है तो अपने कथनानुसार अपरवस्तु के लिए समस्त वस्तु के नाश करने की इच्छा का त्यागकर दे अर्थात् इस पाप पूर्ण कुत्सित विचार को अपने मन से हटा दे अन्यथा तेरे प्राण तथा राज्य नष्ट होनेमें कुछ भी विलम्ब नहीं है। जा ' उस तेरे पापपूर्ण हृदय वाले नीच स्वामी के लिए यह परम कल्याणकारी उपदेश है।

इस प्रकार दूत वचन कह कर दूत को विदा किया। दूत का अपमान करना न्याय विरुद्ध है ऐसा विचार कर दूत महाराज ने कुछ भी दण्ड नहीं दिया।

दूत ने अपने प्रभु राजा [illegible] के समीप उप स्थित होकर महाराजा कुशालसिंह का [illegible] सुनाया। राजा कुशालसिंह का अभिमान पूर्ण उत्तर [illegible] [illegible]

सके और यह दुराचारी किसी प्रकार से मुझे पकड़ कर मेरे पतिव्रत धर्म खण्डन करने का अवश्य उपाय करेगा, अस्तु मेरा कर्तव्य है, कि मैं अपने शील धर्म की किसी प्रकार रक्षा करूं। अहा! वास्तव में महिलाओं का केवल शीलधर्म का संरक्षण करना ही सर्व श्रेष्ट कर्तव्य है। इसी एक शीलधर्म की रक्षाके कारण महिलाओं का सुयश गौरव भारतवर्ष के गगनमें असीम रूप से विस्तृत हो रहा है। उन महिलाओं के लिए खेद है, कि जो महिलाएं किंचित् सांसारिक इन्द्रिय सुख के सम्मुख, नाशवान् विषय प्रलोभनों के सम्मुख अपने जीवन के सर्वस्व रत्न शील धर्म को तिलांजुली दे बैठती हैं। भारतीय कन्याएं वैवाहिक कृत्य के द्वारा अपना सर्वस्व तन, मन, अपने सर्वेश्वर पति को समर्पण कर देती हैं, अस्तु उन के शरीर पर सर्वेल रूप से पति परमेश्वर का अधिकार हो जाता है। इस जीवन में पतिव्रता धर्मप्राण रमणी को यह अधिकार नहीं है, कि वह अपने पति के इस पवित्र शरीर को नारकीय विषयेच्छा पूर्ति के लिए किसी अन्य व्यक्ति के सुपुर्द कर दे। इस महान् दुष्कृत्य के सम्मुख भारतीय महिलाएं अपने प्राण गवा देना कहीं अधिक उचित समझती हैं। हां यह अवश्य है कि इस अवसर पर मुझे कहीं अधिक विचार के साथ कार्य करने की आवश्यकता है जिस से किसी प्रकार के उपद्रव के बिना मैं अपने धर्म का संरक्षण कर सकूं और इस अधर्मी राजा चण्डप्रद्योत को

(८)

वास्तव में पत्नी के लिए उसका पति ही सब कुछ होता है उसके वियोग में नारी का जीवन सर्वथा दुःखपूर्ण, शुष्क एवं श्रीविहीन सा होजाता है। धर्मप्राण महिलाओं के लिए चाहे कुछ भी संपत्ति तथा वैभव न मिले, उन्हें भली प्रकार से भोजन भी प्राप्त न हो, अनेक आपत्तियें उनके ऊपर उपस्थित हों, किन्तु पति के प्रसन्न मुख का निरीक्षण कर उनका हृदय एक क्षण को समस्त आपत्तियों से शून्य हो जाता है। पति के मुख का निरीक्षण करने मात्र से उनके हृदय में नवीन आनन्द नवीन आशा और नवीन शक्ति का संचार होने लगता है। वह अपने समस्त कर्मों द्वारा तथा मन, वाणी एवं शरीर द्वारा प्रत्येक अवस्था में पति को प्रसन्न देखकर ही अपने को प्रसन्न बनाती हैं। पति के कारण समस्त सांसारिक सुखों से शून्य हुए जीवन मरुस्थल में वह अपने हृदय में एक नवीन आशा की ज्योति का निरीक्षण किया करती है।

पति शोक मग्न महारानी मृगावती के समक्ष आज वही समय उपस्थित हुआ है। जब कि उसका हृदयेश्वर, प्यारा पति नहीं है। जो अपनी प्यार भरी दृष्टि से निरीक्षण कर उसके हृदय में आनन्द की वृद्धि करता था। जो किंचित् रुष्ट होजाने पर अपनी प्रियतमा को प्रसन्न करने के अनेक उपाय करता था, जिसने उसके जीवन निर्वाह का

यातना सहने से भयभीत है, यदि उसके हृदय में किंचित् भी मनुष्यत्व का अभिमान है, तो वह इस प्रकार दुष्कृत्य के सामहने से अपना मुंह मोड़ले और इन अपने पापमई विचारों को सर्वथा परित्याग दे और जो मैंने उसे उस समय मान प्रदान किया था वह तो केवल मात्र मेरे शील संरक्षण के लिये एक युक्ति थी। वह उन समस्त मान जनक बातों का विस्मरण करके मेरे प्राप्त होने की आशा को छोड़दे और सन्तोष धारण कर सुख पूर्वक अपने राज्य सुख का उपभोग करे। यही मेरी उसके लिए सर्वोपयोगी शिक्षा है।

शीलवती मृगावती के प्रभाव पूर्ण वचन को श्रवण कर समस्त राज्य सेवक चकित होगए। वह विचारने लगे इस पतिव्रता रानी की युक्ति को धन्य है जो इसने इस प्रकार बलवान राजेन्द्र के सन्मुख युक्ति पूर्वक अपने धर्म का संरक्षण किया। इस प्रकार विचार करते हुए उन्होंने महाराजा चंडप्रद्योतनके समक्ष उपस्थित होकर निराशा जनक स्वरमें कहा—

महाराजा! महारानी मृगावती ने आपको बड़ा भारी धोखा दिया है। वह आपको किसी अवस्था में किसी प्रकार भी ग्रहण नहीं करना चाहती है तथा उसने अपना यह संदेश भेजा है कि आप मेरे प्राप्त होने की अभिलाषा छोड़ दें। भारतीय नारियां कभी एक पति के अतिरिक्त अन्य व्यक्ति से रमण करने की इच्छा नहीं करती हैं।

(१०)

राज्य सेवकों के मुँह से महारानी का स्पष्ट उत्तर श्रवण कर उसका सारा आनन्द भङ्ग हो गया। वह महारानी की कूट नीति के सम्बन्ध में विचार कर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। उसने शीघ्रतः अपनी विशाल सैना सुसज्जित कर चारों ओर से कौशांबी नगर को घेर लिया तथा पुन. उसके पास एक दूत द्वारा निम्न संदेशा भेजा—"तुम्हारा पूर्व उत्तर प्राप्त कर अत्यन्त खेद हुआ; विशेष कर तुम्हारी इस कूटनीति का मुझे अत्यन्त दुःख है, किन्तु मेरा हृदय फिर भी तुम्हारे प्रेमकी ओर आकर्षित हो उठा है। मैं नहीं चाहता कि मैं तुम्हें अब भी किसी प्रकार दुःखित करूं। अस्तु तुम्हारे समक्ष यह अपना अन्तिम सन्देश भेजता हूँ कि यदि तुम अपने पुत्र का मंगल चाहती हो तथा राज्यको भीषण रक्तपात से बचाना चाहती हो तो शीघ्रतः मेरे समीप उपस्थित होकर मुझे अपने प्रेम द्वारा आनन्द प्रदान करो। मैं अब भी तुम्हारे समस्त अपराधों को क्षमा करने के लिए तैयार हूँ अन्यथा यदि तुम अपने हठ पर ही स्थिर रहोगी तो मैं तुम्हारा समस्त अभिमान तथा राज्य एक क्षणमें धूल में मिला दूंगा"।

महाराजा चण्डप्रद्योतन का इस प्रकार क्रोधपूर्ण उत्तर श्रवण कर महारानी मृगावती किंचित् भी भयभीत नहीं हुई। उस के हृदय में किंचित् भी कायरता ने प्रवेश नहीं किया,

किन्तु उसने द्विगुणित साहस से अपनी समस्त सेना का सुचारु रीति से संगठन कर कोट तथा किले पर शूरवीर सामन्तों को स्थापित किया। पश्चात् उसने अपनी अनुपम आत्म-शक्ति के बल पर स्थित रहकर अपने शीलधर्म के ऊपर अविरल विश्वास धारण करते हुए, भक्ति पूर्वक श्री महावीर स्वामी की उपासना की।

(११)

"धर्म एवंहतोहन्ति धर्मो रक्षतिरक्षतः"

उपरोक्त कथन वास्तव में यथार्थ है, जो मानव दृढ़ता पूर्वक अपने धर्म की रक्षा करते हैं, कठिन से कठिन आपत्तिएं और बड़ी से बड़ी सांसारिक प्रलोभनाओं के सम्मुख जो अपने हृदय को अपने सत्य धर्म की ओर से किंचित् भी चालित नहीं करते हैं, धर्म उनकी अवश्य रक्षा करता है; किन्तु हाँ मानवों के हृदय में धर्म के प्रति दृढ़ श्रद्धा और भक्ति होना चाहिए उनके हृदय में कोई शंका अथवा कायरता नहीं आनी चाहिए। सज्जन पुरुषों का हृदय परोपकार तथा शुभ कृत्य करने में जितना सरल उदार और प्रेममई होता है आपत्तियों के सम्मुख वह उतना ही कठिन और दृढ़ हो जाता है। भारतीय महिलाओंने प्रत्येक अवस्था में अपने कठिन धर्ममई हृदय की दृढ़ता पूर्वक परीक्षा दी है। जहां कि उन का हृदय पति प्रेम के सम्मुख सरलता का झरना बन जाता है,

जहां उनका हृदय पुत्र स्नेह के सम्मुख सरलता का स्रोत बन जाता है, जहां वह माता और पत्नी के रूप में अमृत रस की वर्षा करती है, संसार में अद्वितीय स्नेह की रचना करती है, वहीं धर्म रक्षा के लिए, अपनी धार्मिक परीक्षा के लिए, आपत्ति सहन के लिए, उनका वह सरल हृदय वज्र के सदृश दृढ़, सुमेरु सदृश निश्चल और महासागर सदृश गंभीर बन जाता है। वह कठिन से कठिन परीक्षाओं के सम्मुख अपने को उपस्थित कर देती है और भीषण से भीषण प्रण के सम्मुख अपने को अजित बना लेती हैं। महिलाओं के इसी एक गुण के कारण भारतवर्ष में उनकी कीर्ति आज तक अक्षुण्ण रूप से बनी हुई है।

महारानी मृगावती भगवान की दृढ़ उपासना में तन्मय हो गई। उसका हृदय उसका शरीर उसकी वचन प्रवृत्ति वीर उपासनामें आविर्भूत हो गई। भगवान महावीर का आसन कंपित हो गया। सती के दृढ़ प्रभाव से आकंपित हुआ उनका दिव्य शरीर स्वयं कौशांबी नगरी के समीप उपस्थित हो गया। देवताओं ने कौशांबी नगरी के उसी पवित्र उद्यान में भगवान के समवशरण की रचना की। बारह सभाओं में उपस्थित हुए देव पशु पक्षी गण भगवान का दिव्य उपदेश श्रवण करने लगे।

रमणीरत्न की इस अतुलित वीर भक्ति का आदर्श

हुआ, जो थोड़े ही दिन जिया। सम्वत् ४७ में श्रीमती कोम-
लबाई और ४६ में चि० माणिकचन्द्रका जन्म हुआ। इनके
बाद आपके कोई सन्तान नहीं हुई। पिछली दोनों सन्तानें
जीवित हैं। भाई माणिकचन्द्रका विवाह हो चुका है और उनके
कई संतानें हो चुकी हैं।

पण्डितजीके सार्वजनिक जीवन का प्रारम्भ बम्बई से
होता है। यहाँ आपके और पं० धन्नालालजीके उद्योगसे मार्ग-
शीर्ष सुदी १४ सम्वत् १९४९को दिगम्बर जैनसभाकी स्थापना
हुई। पण्डित धन्नालालजी आपके अनन्य मित्रों में से हैं। लोग
आप दोनों को 'दो शरीर एक प्राण' कहा करते थे। पण्डित
धन्नालालजी आपके अनेक कार्यों में प्रधान सहायक रहे हैं।
इसी वर्ष के माघमें श्रीमन्त सेठ मोहनलालजी की ओर से
खुरई (सागर) की सुप्रसिद्ध रथप्रतिष्ठा हुई। इतना बड़ा जन
समूह शायद ही किसी मेले में इकट्ठा हुआ होगा। दिगम्बर
जैन समाज के प्रायः सभी धनी मानी और पण्डितजन इसमें
उपस्थित हुए थे। इस अवसर को बहुत ही उपयुक्त समझकर
बम्बई सभाने आपको और पण्डित धन्नालालजी को सम्पूर्ण
दिगम्बर जैन समाज की एक महासभा के स्थापित करने के
लिए खुरई भेजा। इसके लिए यहाँ खूब प्रयत्न किया गया;
परन्तु यह जानकर कि कलकत्तावालों मथुरा के मेले में महासभा
की स्थापना का निश्चय हो चुका है इन्हें मौन रहना पड़ा।

बम्बई की दिगम्बर जैनपाठशाला सं० ५० में स्थापित हुई थी। यह पाठशाला अब भी चल रही है। पं० जीवराम लल्लुराम शास्त्री के पास आपने परीक्षामुख, चन्द्रप्रभकाव्य और कातंत्र व्याकरण को इसी पाठशाला में पढ़ा था।

कुण्डलपुर के महासभा के जल्से में यह सम्मति हुई कि महाविद्यालय सहारनपुर से उठाकर मोरेना में पण्डितजी के पास भेज दिया जाय; परन्तु पण्डितजी का वैमनस्य मुन्शी चम्पतरायजी के साथ इतना बढ़ा हुआ था कि उन्होंने उनके झगड़े में रहकर इस कामको स्वीकार न किया। इसी समय उन्हें एक स्वतन्त्र जैनपाठशाला खोलकर काम करने की इच्छा हुई। आपके पास पं० वंशीधरजी कुण्डलपुर के मेले के पहले ही से पढ़ते थे। अब दो तीन विद्यार्थी और भी जैनसिद्धान्त का अध्ययन करने के लिए जाकर रहने लगे। इन्हें छात्रवृत्तियां बाहर से मिलती थीं। पण्डितजी केवल इन्हें पढ़ा देते थे। इसके बाद कुछ विद्यार्थी और भी आ गये और एक व्याकरण का अध्यापक रखने की आवश्यकता हुई जिसके लिए सबसे पहले सेठ सुखानन्द शिवराम ने २०) रु० मासिक सहायता देना स्वीकार किया। धीरे धीरे छात्रों की संख्या इतनी हो गई कि पण्डितजी को उनके लिये नियमित पाठशाला और छात्रालय की स्थापना करनी पड़ी। यही पाठशाला आज "गोपाल जैनसिद्धान्त विद्यालय" के नामसे प्रसिद्ध है और इसके द्वारा जैनधर्म के

गये, उस का उन्होंने कोई एक भी व्याकरण अच्छी तरह नहीं पढ़ा था। गुरु मुख से तो उन्होंने बहुत ही थोड़ा नाम मात्र को पढ़ा था। तब वे इतने बड़े विद्वान् कैसे हो गये? इस का उत्तर यह है कि उन्होंने स्वावलम्बन-शीलता और निरन्तर के अध्यवसाय से पाण्डित्य प्राप्त किया था। पण्डित जी जीवन भर विद्यार्थी रहे। उन्होंने जो कुछ ज्ञान प्राप्त किया, वह अपने ही अध्ययन के बल पर: और इस कारण उस का मूल्य रटे हुए या बांधे हुए ज्ञान से। बहुत अधिक था। उन्हें लगातार दश वर्ष तक बीसों विद्यार्थियों को पढ़ाना पड़ा और उन की शंकाओं का समाधान करना पड़ा। विद्यार्थी प्रौढ़ थे, कई न्यायाचार्य और तर्कतीर्थों ने भी आप के पास पढ़ा है। इस कारण प्रत्येक शङ्का पर आप को घंटों परिश्रम करना पड़ता था। जैनधर्म के प्रायः सभी बड़े बड़े उपलब्ध ग्रन्थों को उन्हें आवश्यकताओं के कारण पढ़ना पड़ा। इसीका यह फल हुआ कि उनका पाण्डित्य असामान्य हो गया। वे न्याय और धर्म शास्त्र के बेजोड़ विद्वान् हो गए और इस बात को न केवल जैनों ने, किन्तु कलकत्ते के बड़े २ महामहोपाध्यायों और तर्कवाचस्पतियों ने भी माना। विक्रम की इस बीसवीं शताब्दी के आप सब से बड़े दिगम्बर जैन पण्डित थे. आपकी प्रतिभा और स्मरणशक्ति विलक्षण थी।

वक्तृत्व और वादित्व ।

पण्डितजी की व्याख्यान देनेकी शक्ति भी बहुत अच्छी थी। यह भी आपको अध्ययन के बल से प्राप्त हुई थी। आप के व्याख्यानों में यद्यपि मनोरञ्जकता नहीं रहती थी और जैन सिद्धान्त के सिवाय अन्य विषयों पर आप बहुत ही कम बोलते थे, फिर भी आप लगातार दो दो तीन तीन घण्टे तक व्याख्यान दे सकते थे। आप के व्याख्यान सिद्धान्तों के ही काम के होते थे। वाद या शास्त्रार्थ करने की शक्ति आप में बड़ी विलक्षण थी। जब जैनतत्त्वप्रकाशिनी सभा इटावे के दौरे शुरू हुए और उसने पण्डितजीको अपना अगुआ बनाया तब पण्डित जी की इस शक्ति का खूब ही विकास हुआ। आर्यसमाज के बड़े बड़े शास्त्रार्थों में आप की वास्तविक विजय हुई और उस विजय को प्रतिपक्षियों ने भी स्वीकार किया। बड़े से बड़ा विद्वान आप के आगे बहुत समय तक न टिक सकता था। आप की धारणा इस शक्ति का प्रधान साधन था। कभी कभी आप कहा करते थे कि मैं अमुक अमुक महामहोपाध्यायों का भी बहुत जल्दी पराजय कर सकता हूँ, परन्तु क्या करूं, उन के सामने मेरी तरह धाराप्रवाह संस्कृत बोलने की शक्ति मुझ में नहीं है। पण्डित जी संस्कृत में बात चीत कर सकते थे और अपने छात्रों के साथ वे इसमें शंका करते थे परन्तु फिर भी उस का व्याकरण

इसके कारण आप को कभी कभी बड़ा कष्ट उठाना पड़ता था, पर आप उसे चुप चाप सह लेते थे।

पण्डित जी को कोई भी व्यसन न था। खाने पीने की तुलना पर आपको अत्यधिक ख़्याल था। खाने पीने की अनेक वस्तुएं आपने छोड़ रक्खी थीं। इस विषय में आप का व्यवहार बिलकुल पुराने ढङ्ग का था। रहन सहन आप की बहुत सादी थी। कपड़े आप इतने मामूली पहनते थे, इन की ओर आप का इतना कम ध्यान रहता था, कि अपरिचित लोग आप को कठिनाई से पहिचान सकते थे।

धर्म कार्यों के द्वारा आप ने अपने जीवन में कभी एक पैसा भी नहीं लिया। यहां तक कि इस के कारण आप अपने प्रेमियों को दुःखी तक कर दिया करते थे, पर भेंट या विदाई में एक दुपट्टा या कपड़े का एक टुकड़ा भी ग्रहण नहीं करते थे। हां जो कोई बुलाता था उससे आने जाने का किराया ले लेते थे।

उत्साह और अध्यवसाय।

पण्डित जी में गज़ब का उत्साह और गज़ब की काम करने की लगन थी। पिछले दिनों में उनका शरीर बहुत ही शिथिल हो गया था, पर उन के उत्साह में ज़रा भी अन्तर नहीं पड़ा था। वे घूमते रहते थे। जो काम उन्हें सौंपा जाता था,

ािय था और यहां आने से ही. इस में सन्देह नहीं
ो अन्तिम घड़िया और जल्दी आगई।

ोडन जी की निःस्वार्थ वृत्ति और ईमानतदारी पर
 दृढ़ विश्वास था। यही कारण है जो बिना किसी
ामदनी के ये विद्यालय के लिए लग भग दश हज़ार
ाल की सहायता प्राप्त कर लेते थे।

कौटुम्बिक कष्ट।

निःस्वार्थसेवा ।

पण्डित जी की प्रतिष्ठा और सफलता का सब से बड़ा कारण उन की निःस्वार्थसेवा या परोपकार शीलता का भाव है। एक इसी गुण से वे इस समय के सब से बड़े जैन-पण्डित कहलाए गए। जैनसमाज के लिये उन्होंने अपने जीवन में जो कुछ किया, उस का बदला कभी नहीं चाहा। जैनधर्म की उन्नति हो, जैनसिद्धान्त के जानने वालों की संख्या बढ़े, केवल इसी भावना से उन्होंने निरन्तर परिश्रम किया। अपने विद्यालय का प्रबन्ध सम्बन्धी तमाम काम करने के सिवाय अध्यापन कार्य भी उन्हें करना पड़ता था। हमने देखा है, कि शायद ही कोई दिन ऐसा जाता होगा कि जिस दिन पण्डितजी को अपने कमसे कम चार घंटे विद्यालय के लिए न देने पड़ते हों। जिन दिनों में पण्डित जी का व्यापार सम्बन्धी काम बढ़ जाता था और उन्हें समय नहीं मिलता था, उस समय बड़ी भारी थकावट हो जाने पर भी वे कभी कभी १०—११ बजे रातको विद्यालय में आते थे और विद्यार्थियों को घंटा भर पढ़ा कर सन्तोष पाते थे। गत कई वर्षों से पण्डित जी का शरीर बहुत शिथिल हो गया था, फिर भी धर्म के काम के लिये वे बड़ी बड़ी लम्बी सफ़र करने से नहीं चूकते थे। भिण्ड के मेले के लिए जब आप गये, तब आप का स्वास्थ्य बहुत

हीं चिन्तनीय था और यहाँ जाने से ही, इस में सन्देह नहीं कि आपकी अन्तिम घड़िया और जल्दी आगईं।

पण्डित जी की निःस्वार्थ वृत्ति और ईमानदारी पर लोगों को दृढ़ विश्वास था। यही कारण है जो बिना किसी स्थिर आमदनी के ये विद्यालय के लिए लग भग दश हज़ार रुपया साल की सहायता प्राप्त कर लेते थे।

कौटुम्बिक कष्ट।

पण्डित जी को जहाँ तक हम जानते हैं। कुटुम्ब-सम्बन्धी सुख कभी प्राप्त नहीं हुआ। इस विषय में हम उन्हें ग्रीस के प्रसिद्ध विद्वान सुकरात के समकक्ष समझते हैं। पंडितानीजी का स्वभाव बहुत ही कर्कश, क्रूर, कठोर, ज़िद्दी और अर्द्धविक्षिप्त था। जहाँ पण्डित जी को लोग देवता समझते थे, वहाँ पण्डितानी जी उन्हें कौड़ी काम का भी आदमी नहीं समझती थीं! वे उन्हें बहुत ही तङ्ग करती थीं और इस बात का ज़रा भी ख़याल नहीं रखती थीं कि मेरे बर्ताव से पण्डित जी की कितनी अप्रतिष्ठा होती होगी। कभी कभी पण्डितानी जी का धावा विद्यालय पर भी होता था और उस समय छात्रों तक की आफ़त आ जाती थी। अभी पण्डित जी जब आगरे में बहुत ही सख्त बीमार थे

पण्डित जी उन्हें मुस्कान के ही समान चुपचाप सहन किया करते थे।

विद्यालय से प्रेम।

विद्यालय से पण्डित जी को बहुत मोह हो गया था। उसे ही वे अपना सर्वस्व समझते थे। पण्डित जी बड़े ही अभिमानी थे। किसी से एक पैसे की भी याचना करना उनके स्वभाव के विरुद्ध था। शुरू शुरू में—जब मैं सिद्धान्त विद्यालयका मंत्री था—पण्डित जी विद्यालय के लिए सभाओं में सहायता माँगने के सख्त विरोधी थे पर पीछे पण्डित जी का वह सख्त अभिमान विद्यालय के वात्सल्य की धारा में बह गया और उसके लिए 'भिक्षां देहि' कहने में भी उन्हें संकोच नहीं होने लगा।

विविध बातें।

पण्डित जी बहुत सीधे और भोले थे। उनके भोलेपन से धूर्त लोग अक्सर लाभ उठाया करते थे। एकाग्रता का उनको बड़ा अभ्यास था। चाहे जैसे कोलाहल और अशांति के स्थान में वे घण्टों तक विचारों में लीन रह सकते थे स्मरण शक्ति भी उनकी बड़ी विलक्षण थी—वर्षों की बातों को वे अक्षरशः याद रख सकते थे। विदेशी रीति रिवाजों

जैन साहित्य रत्नालय की

सस्ती, सर्वोपयोगी, उत्तम पुस्तकों का

नवीन सूचीपत्र

अज्ञान तम का नाश कर शुभ ज्ञान पाना यदि तुम्हें ।
संसार में सम्मान मय जीवन बनाना यदि तुम्हें ॥
यदि स्वर्ग तथ मोक्ष सुख का मार्ग पाना इष्ट है ।
तो आइए साहित्य की कल्याण कारी सृष्टि में ॥

साहित्य रत्नालय ने आपके विद्यादान व ज्ञान सम्पादन के मार्ग को बिलकुल सरल कर दिया है, क्योंकि इसने ऐसी पुस्तकें प्रकाशित की हैं जो कि कन्याओं, बालकों, इष्ट मित्रों और सर्व साधारण को उपहार में देने योग्य हैं तथा जिनके पढ़ने से ज्ञान विवेक, सदाचार, आत्मबोध और सर्व ज्ञान की बढ़ता जाता है आप इन्हें मंगाकर अपने ज्ञान की वृद्धि व मनोरंजन कीजिए ।

महा पुरुषों की अद्भुत वीरता, स्वार्थ त्याग और महान शक्ति का दिग्दर्शन कराया गया है। जैनधर्म की अहिंसा पर कायरता का दोषारोपण करने वाले अन्य मतावलम्बियों की कुयुक्तियों का मुँह तोड़ उत्तर देकर जैन महा पुरुषों की अद्वितीय वीरता और विश्व विजयिनी शक्ति का वर्णन किया गया है।

वीर पुरुष अपने पुरुषार्थ के बल से देवों को भी किस प्रकार जीत लेते हैं, छह खंड का राज्य करते हुए भी धर्मात्मा पुरुष किस प्रकार धर्मका साधन करते हुए आत्म कल्याण में मग्न रहते हैं, राज्य के पीछे भाइयों भाइयों में भी किस प्रकार युद्ध छिड़ जाता है। विषयों में फँसे हुए संसारी मनुष्यों का किस प्रकार आत्म उद्धार के मार्ग पर लाया जाता है, उत्तम धर्म क्रियाओं का किस प्रकार जन्म हुआ, जैनियों में कैसे २ वीर पराक्रमी धार्मिक पुरुष थे, इन बातों का ज्ञान आपको इस एक पुस्तक से सहज ही में प्राप्त हो जायगा। एक बार आप इस पुस्तक को अवश्य पढ़िए। मूल्य केवल ॥) मात्र

वीर पंच रत्न

अर्थात

आदर्श जैन कुमार

यह पुस्तक क्या है वीरता का जीता जागता चित्र है। इसमें जैन कुमारों की वीरता का वर्णन इस प्रकार की भाषा में किया गया है कि मुर्दा दिलोंमें वीरता का जोश उमड़ आता है और आत्म गौरव तथा मानवी शक्ति से हृदय भर जाता है।

आवश्यकता थी। इसी कमी को पूरा करने के लिए सरल हिन्दी भाषा में सरस छन्दों में अनेक प्राचीन तथा नवीन ग्रंथों को देखकर इस पुस्तक की रचना की गई है। इसमें विवाह संबंधी अनेक जानने योग्य बातें हैं तथा विवाह किस लिए किया जाता है, विवाह की प्रथा कब से और कैसे चली आदि का वर्णन बड़ी उत्तमता से किया है। शाखोच्चार के नवीन छन्द वर वधू के सत वचन, आशीर्वाद वचन आदि बड़े ही सुन्दर छन्दों में रचे गए हैं। इसके द्वारा हर एक गृहस्थ बड़ी सरलता से अपने आप जैनपद्धति के अनुसार विवाह करा सकता है। मूल्य ।) मात्र।

सतीचरित और शील महिमा

इसमें नाटक के ढङ्ग पर सतियों के शील की महिमा का वर्णन किया गया है। मूल्य ।)

सतीरत्न

आदर्श जैन कुमारिएं

भारतवर्ष में जैनकुमारियों का आदर्श सर्व श्रेष्ठ है। उन्हीं धर्मशीला कुमारियों का पवित्र चरित्र इस पुस्तक में सरल भाषा द्वारा वर्णन किया गया है, अपनी अपूर्व धर्म निश्चलता और दृढ़ प्रतिज्ञा द्वारा उन्होंने किस प्रकार निर्भयता का परिचय दिया है और अपने अद्वितीय आत्म तेज द्वारा किस प्रकार धर्म विजय प्राप्त की है, इत्यादि हृदय हिला देने वाली घटनाओं से यह संपूर्ण पुस्तक भरी हुई है। यदि आप ब्रह्मचर्य और चारित्र के द्वारा शक्ति और सम्मान

प्राप्त करना चाहते हैं तथा अपनी पुत्रियों, माताओं और पत्नियों को धर्मशीला, दृढ़व्रता और कर्तव्य निष्ठा बनाना चाहते हैं तो इस की एक प्रति मंगाकर अवश्य देखिए। मूल्य केवल ।) मात्र

वीर गायन मंजरी

जैन वीरों के हृदय में वीरता का मन्त्र फूंकने वाले, और धर्म तथा जाति के ऊपर बलिदान होने का पाठ पढ़ाने वाले एक से एक जोशपूर्ण गानों का यह उत्तम भण्डार है। नई तर्ज़, अनूठे भाव और जीती जागती भाषा में रचे गए इसके प्रत्येक छंद हृदय में चुभने वाले हैं। मूल्य =) मात्र।

"परवार बन्धु"—पुस्तक की भाषा ललित तथा पद्य मनोहर रक्खे गये हैं. बालकों को बाँटने लायक़ पुस्तक है।

"वीर"—"वीरगायनमञ्जरी पद्यों में और भजनों का अच्छा संग्रह है। जैन नौजवान उनको पढ़ कर प्रसन्नता और शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं।

"गोला पूर्वजैन"—वीरगायन मंजरी का प्रत्येक भजन शिक्षाप्रद सरस और भावपूर्ण है। समाज में जीवन संचरित करने के लिए ऐसे ही उपयोगी गानों की आवश्यकता है।

वीर गायन

जोशीले और वीरत्व पूर्ण गायनों का संग्रह। मूल्य =

सदाचार रत्न कोष

स्वामी समन्तभद्राचार्य के रत्न करंड श्रावकाचार का यह सरस और सुन्दर अनुवाद है। गृहस्थ धर्म तथा श्रावकों